नई सोच, नया बदलाव।

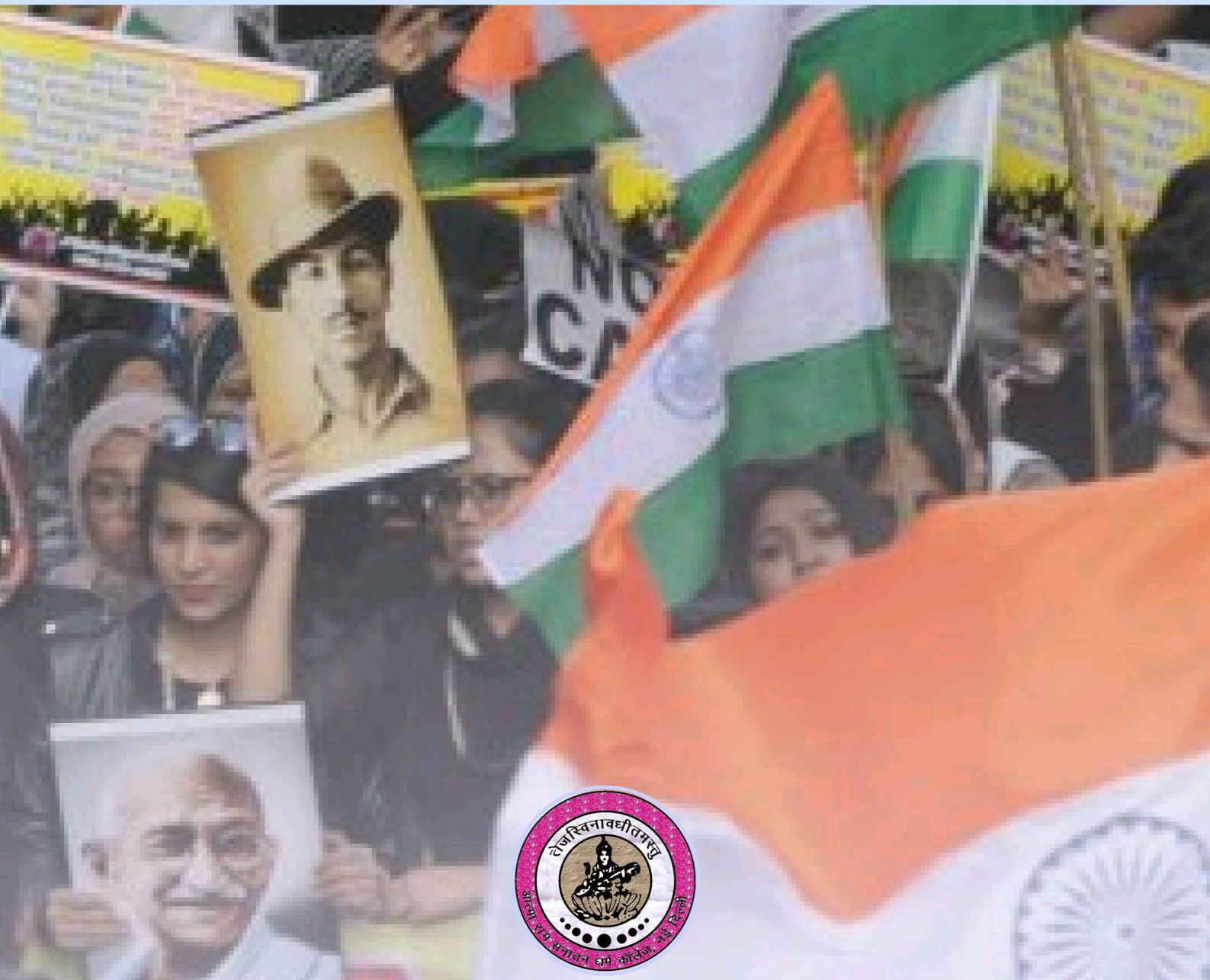

समन्वय

आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

सातवां अंक

मार्च, 2021

संरक्षक:
प्रोफेसर ज्ञानतोष कुमार झा
प्राचार्य

संयोजक: डॉ. अरविंद कुमार मिश्र
संयोजक समिति: श्री दीपांकर, डॉ. श्रीधरम

संपादक मंडल

सुलभ यादव
बी.ए. (ऑनर्स) राजनीति विज्ञान
तृतीय वर्ष

सीमांकन सहाय
बी.ए. (ऑनर्स)
राजनीति विज्ञान द्वितीय वर्ष

अभिषेक तिवारी
बी.ए. (ऑनर्स) हिंदी
प्रथम वर्ष

डिजिटल समन्वयक

ऐश्वर्या गौतम
बी.ए. (ऑनर्स) राजनीति विज्ञान
द्वितीय वर्ष

के.आर.स्वाति
बी.ए. (ऑनर्स) अंग्रेजी
तृतीय वर्ष

अनुक्रमणिका

1.)छात्र और राजनीति 3 - 5
सुलभ यादव

2.) मुक्तिबोध का आलोचना- कर्म 6 - 10
रिद्धि कुमारी

3.)विज्ञान:आध्यात्मिकता का एक विकल्प..... 11 - 13
आंनद

4.)मृत्युशय्या पर क्षेत्रीय भाषाएं:एक उत्तरपुर्वी नज़रिया.... 14 - 17
गुंजन दास

5.)इस्लामी दुनिया में नारीवाद 18 - 21
सौम्या

6.)अशोक के फूल के आधार पर हजारीप्रसाद द्विवेदी की सांस्कृतिक दृष्टि 18 - 20
मो. आजम

7.)राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार 22 - 25
सीमांकन सहाय

8.)कोरोना काल : भारत की नई पहचान 26 - 29
अभिषेक तिवारी

9.)राजनीति एवं प्रासंगिकता 30 - 32
संगम शर्मा

10.)प्रो. मकरंद परांजपे का इंटरव्यू 35 - 37
दीपक तैनगुरिया

संपादकीय

अंतर अनुशासनिक पत्रिका 'समन्वय' का प्रस्तुत अंक आपके सामने है जो कि बी.ए. एवं एम.ए. के विद्यार्थियों के(अपने ज्ञान और समझ के दायरे में) शोधपूर्ण व सशक्त आलेखों से सुशोभित है।

इस अंक का पहला आलेख छात्र सुलभ यादव का है जो 'छात्र और राजनीति' विषय पर केन्द्रित है जिसमें छात्रों के जीवन पर पड़ने वाले राजनैतिक प्रभावों का अवलोकन कर उसकी महत्ता को समझाने का प्रयास किया गया है।इसी कड़ी में दूसरा शोधपूर्ण आलेख रिद्धि कुमारी का है जो 'मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि' पर है।यह आलेख एक परास्नातक स्तर पर छात्रा की साहित्य और उसकी आलोचनात्मक समझ का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। अगला आलेख छात्र आनंद का है जो 'विज्ञान:अध्यात्म का एक विकल्प' विषय पर अपनी तार्किक व वास्तविक समझ को व्यक्त करने का प्रयास करता है।

इस अंक का एक अन्य महत्वपूर्ण आलेख छात्र गुंजन दास द्वारा 'मृत्युशय्या पर क्षेत्रीय भाषाएँ: एक उत्तरपूर्वी नजरिये से' विषय पर केन्द्रित है। मातृभाषाओं के प्रति नकली चिंता के दौर में एक युवा छात्र द्वारा इस समस्या के प्रति तर्कपूर्ण दृष्टि से एक गहरी चिंता व्यक्त हुई है। गुंजन ने मातृभाषा के प्रति अपने मर्म का बखूबी वर्णन किया है।अगला आलेख छात्रा सौम्या का है जो 'इस्लामी दुनिया में नारीवाद' जैसे गंभीर विषय पर कलम चलाने का एक स्नातक छात्र द्वारा महत्वपूर्ण प्रयास है।अपनी जानकारी और अध्ययन की सीमा में सौम्या का यह आलेख पठनीय है और गहरे शोध का परिणाम है। इसी श्रृंखला में मो. आज़म द्वारा हिंदी के महान उपन्यासकार, आलोचक व निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करता आलेख है जो उनके निबंध 'अशोक के फूल' पर विशेष केन्द्रित है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए सीमांकन सहाय द्वारा प्रस्तुत आलेख मिथकीय और अलौकिक पुरुष के रूप में बहु स्वीकृत राम को धार्मिक परिदृश्य से अलग हट कर राष्ट्रीय परिदृश्य पर समझने का प्रयास करता है। इसमें मुख्य रूप से विभिन्न भाषाओं में वर्णित राम के विविध छवियों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। एक अन्य लेख में प्रथम वर्ष के छात्र अभिषेक तिवारी ने कोरोना काल में भारत की सुधरती स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं। छात्र संगम शर्मा ने अपने आलेख में आज के समय में राजनीति और उसकी प्रासंगिकता पर एक युवा छात्र नजरिए से विचार किया है जो आज के समय में राजनीति के प्रति बनती युवा अभिवृत्ति को समझने का अवसर देता है।

हम प्रत्येक अंक में कॉलेज के किसी एक पूर्व छात्र के लेखन को भी जगह देने का प्रयास करते हैं। इसी कोशिश में इस पत्रिका का समापन -अपने पूर्व मेधावी छात्र (और बेस्ट डिबेटर) दीपक तैनगुरिया द्वारा प्रोफेसर मकरंद परांजपे का विवेकानंद के सन्दर्भ में लिए गए साक्षात्कार से- किया है।

पत्रिका के इस अंक को अंतिम रूप देने में राजनीति विज्ञान तृतीय वर्ष के छात्र सुलभ यादव के नेतृत्व में हिंदी ऑनर्स प्रथम वर्ष के छात्र अभिषेक तिवारी, राजनीति विज्ञान द्वितीय वर्ष के छात्र सीमांकन सहाय और ऐश्वर्या गौतम के एकीकृत कर्मनिष्ठ प्रयास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह अंक इन सभी विद्यार्थियों के सामूहिक प्रयास का सार्थक परिणाम है। साथ ही साथ इस पत्रिका में एक महत्वपूर्ण सहायक की भूमिका निभाने के लिए यह संपादक मंडल अंग्रेजी विभाग की छात्रा स्वाती रामचंद्रन का आभारी है। अंत में हर उस लेखक -जिसने अपने विचार पाठकों से साझा किए- के प्रति संपादक मंडल आभारी है,जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस अंक में हमारी सहायता की है।हम उन सब के आभारी हैं जिनसे हमें समन्वय के नए संस्करण को प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिलती है। और इन समस्त प्रयासों के पीछे प्राचार्य महोदय की प्रेरणा निरंतर काम करती है।इसलिए समस्त संपादकीय टीम इस अंक के लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करती है। पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेख के प्रति उसके लेखक जिम्मेदार होंगे।

1.छात्र और राजनीति

सुलभ यादव

बी.ए. ऑनर्स,राजनीति विज्ञान , तृतीय वर्ष

शिक्षार्थ आइए,सेवार्थ जाइए" अक्सर विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों और विद्यालयों के द्वार पर लिखा रहता है। शिक्षार्थ का अर्थ-*शिक्षा ग्रहण करने वाले* और सेवार्थ का अर्थ- *सेवा करने वाले*। किंतु यहाँ हमें शिक्षा एवं सेवा का सही अर्थ समझना है क्योंकि बात यहाँ छात्रसंघ की राजनीति की है।

कई तथाकथित बुद्धिजीवियों और विद्वानों का कहना है कि छात्रों को राजनीति से दूर रहना चाहिए ताकि वे अध्ययन कर सकें,शिक्षा प्राप्त कर सकें और भविष्य में देश को संभाल सकें।

तब छात्र राजनीति पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। क्या छात्र राजनीति देश के भविष्य के लिए नकारात्मक सिद्ध होती है? क्या छात्र राजनीति से छात्र अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए हमें शिक्षा और सेवा का सही अर्थ समझना होगा। शिक्षा केवल वह नहीं है जो केवल किताबी ज्ञान पर आधारित हो, जो चंद किताबों के पढ़ने से आती हो और जो केवल विद्यालयी परीक्षाओं तक सीमित हो। सच्चे अर्थों में शिक्षा का अर्थ है*'समाज से सीखना और उसी सीख को समाज में वापस कर देना'*। और तब छात्र राजनीति अपनी भूमिका अदा करती है।छात्र समाज में उपस्थित कुरीतियों का विरोध करते हैं,अन्याय,असमानता,गरीबी,भुखमरी,बेरोजगारी के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं, महिलाओं के सम्मान और उनके अधिकारों के लिए आवाज़ बुलंद करते हैं। साथ ही साथ अगर सेवा की बात करें तो क्या वे इन मुद्दों पर आवाज़ उठा कर देश की सेवा में भागीदारी नहीं निभा रहे हैं, क्या यही छात्र-छात्राएँ देश के सतत विकास में भूमिका अदा नहीं कर रहे हैं। हमें समझना है कि यह सभी छात्र-छात्राएँ ही आगे चलकर देश को चलाएंगे। यह छात्र- छात्राएँ ही लोकतंत्र को यूं ही सततता से बनाए रखेंगे। यही भविष्य में संविधान की आवाज बनेंगे।

विश्वविद्यालयों में प्रतिवर्ष होने वाले छात्रसंघ के चुनाव उन छात्रों को न केवल उस संस्थान के प्रति जिम्मेदार बनाते हैं, बल्कि उन्हें देश के प्रति भी सजग बनाते हैं।

हमारे स्वतंत्रता के महानायकों ने भी छात्रों की देश के प्रति भूमिका का पुरजोर समर्थन किया था। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1922 में छात्रों को सरकारी स्कूल से अलग होकर अंग्रेजी हुकूमत का असहयोग करने को कहा था।

वहीं दूसरी ओर भगत सिंह ने भी 1929 में एक लेख में लिखा था कि "*सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश-सेवकों की जरूरत हैं, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या वृद्धों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? यहां तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो।सिर्फ गणित और ज्योग्राफी की परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो।*"

(https://www.marxists.org/hindi/bhagat-singh/1929/vidyarthiyon.htm)

सुभाष चंद्र बोस ने भी 1929 में ही लाहौर में छात्रों को संबोधित करते हुए कहा था कि "*आज के छात्रों का आंदोलन गैर-जिम्मेदार लड़के-लड़कियों का आंदोलन नहीं है।*

यह पूरी तरह जिम्मेदारों का आंदोलन है और ये नौजवान लड़के-लड़कियां एक बड़े आदर्श,अपने चरित्र का विकास करने तथा अपने देश की प्रभावी तथा उपयोगी सेवा करने से प्रेरित हैं।" सुभाष चंद्र बोस भी छात्र राजनीति के पुरजोर पक्ष में थे और उन्होंने छात्र-छात्राओं को राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी लेने के लिए प्रोत्साहित किया था।

(https://www.navjivanindia.com/people/here-is-the-speech-of-netaji-subhash-chandra-bose-in-which-he-said-student-politics-is-necessary-for-country-and-society)

1974 ईस्वी में जयप्रकाश नारायण आंदोलन में भी छात्र ही प्रथम दृष्टया भूमिका में थे, वही गुजरात और बिहार में संपूर्ण क्रांति के सूत्रधार थे।

(इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस, पेज-313)

छात्र राजनीति का इतिहास भी बड़ा पुराना रहा है। नीतियों के ज्ञाता चाणक्य ने भी सिकंदर के आक्रमण से भारतवर्ष की रक्षा के लिए तक्षशिला के छात्रों का ही सहारा लिया किया था।

वर्तमान परिस्थितियों को देखें तो भारत में हो रहे किसान आंदोलन में छात्र भी अपनी भूमिका निभा रहे हैं।देश के कई राज्यों हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान तेलंगाना, दिल्ली आदि से छात्र-छात्राएं आ आकर सरकार द्वारा लाए गए तीन कृषि कानूनों के विरोध में दिल्ली बॉर्डरों पर चल रहे आंदोलन में किसानों का समर्थन कर रहे हैं।

किसान छात्र पंचायतों का आयोजन भी किया जा रहा है इसमें देश के कई बड़े विश्वविद्यालयों जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय आदि के छात्र छात्राएँ शामिल हो रहे हैं। यहां तक कि न्यूयॉर्क से भी छात्रों का एक दल आंदोलन में शामिल हुआ।

(https://www.jagran.com/haryana/hisar-kisan-agitation-will-now-prepare-for-kisan-students-panchayat-at-tikri-border-and-will-be-organized-on-7th-21430383.html)

वहीं दूसरी ओर कई छात्र संघों ने कृषि कानूनों का समर्थन किया और किसान आंदोलन के विरोध में अपना विरोध भी जताया और अपने विचार प्रस्तुत किए।

गुजरे वर्ष जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शुल्क-वृद्धि के संदर्भ में छात्रों का विरोध हो अथवा सरकार द्वारा लाए गए सी.ए.ए.तथा भविष्य में आ सकने वाली एन.आर.सी. के पक्ष या विपक्ष में उनके विचार हों। ये छात्र ही हैं, जो देश में महत्वपूर्ण ढंग से पक्ष या विपक्ष की भी भूमिका निभाते हैं एवं सही और गलत मुद्दों पर सरकार का समर्थन और विरोध करते हैं।

कोरोना काल के दौरान भी छात्र-छात्राओं ने अपनी भूमिका अदा की। कई ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स और सोशल मीडिया के माध्यम से जागरूकता अभियान चलाए और लोगों को कोरोना वायरस से सावधान और सुरक्षित रहने के उपाय भी बताए।
वहीं भारत में बढ़ती बेरोजगारी पर भी छात्र कोरोना महामारी के दौरान समय की सीमाओं को समझते हुए सड़कों पर नहीं उतरे बल्कि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स और

सोशल मीडिया पर ही अपने विचार रखे और ट्विटर ट्रेंड कराते रहे। इस तरह छात्र बड़े पैमाने पर अपना विरोध दर्ज कराते रहे हैं।

न केवल भारत में बल्कि विश्वभर में छात्र राजनीति में महती भूमिका अदा करते हैं। चाहे 2014 की हांगकांग की परंतु एक प्रश्न यह भी है कि ये छात्र ही राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक मामलों में भागीदारी क्यों निभाए? ऐसा इसलिए है

क्योंकि यह नौजवान छात्र-छात्राएं ही हैं जो गृहस्थ जीवन से मुक्त हैं और इनके लोकतंत्र की लड़ाई में जोशुआ की भूमिका हो या महिलाओं के अधिकारों की लड़ाई के लिए मलाला यूसुफ़ज़ई को 17 वर्ष की उम्र में शांति का नोबेल पुरस्कार का मिलना हो अथवा कुछ दिनों पहले स्वीडिश पर्यावरण कार्यकर्ता ग्रेटा थनबर्ग की पर्यावरण की रक्षा तथा वैश्विक तपन के संदर्भ में बड़े-बड़े देशों के लिए ललकार रही हो या फिर भारत के किसान आंदोलन पर उनका एक ट्वीट रहा हो।

यह छात्र ही हैं जो न केवल किसी देश विशेष के लिए बल्कि संपूर्ण विश्व की समस्याओं के प्रति चिंतित हैं और इन समस्याओं से दो-दो हाथ कर निपटने को तैयार हैं । स्वतंत्र सोचने के रास्ते में कोई बाधा नहीं है। ये देश के मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए अपनी पढ़ाई को बड़ी ही साफगोई से उपयोगिता में लाते हैं। वे वर्तमान और भावी समाज के मुद्दों पर अपने विचार रखते हैं और युवा सोच से राजनीति को भी सदैव युवा बनाये रखते हैं, एवं देश और विश्व के सतत विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं।

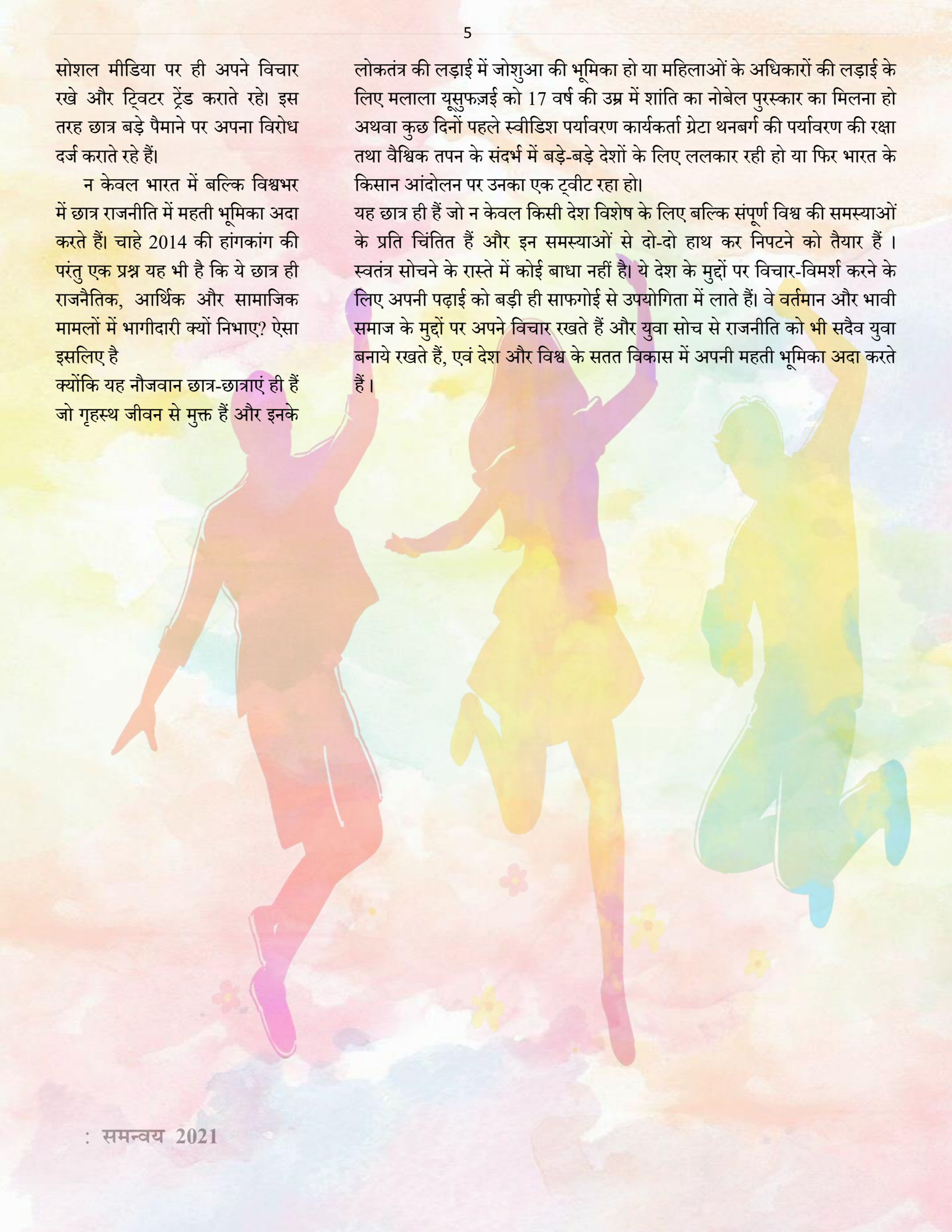

मुक्तिबोध का आलोचना- कर्म

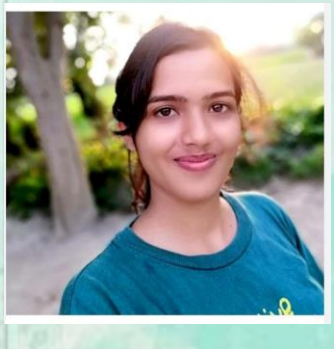

रिद्धि कुमारी,एम.ए.,हिंदी

गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964) हिंदी साहित्य के प्रमुख कवि ,आलोचक,निबंधकार ,कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं।उन्हें प्रगतिशील कविता और नई कविता के बीच का एक सेतु भी माना जाता है।मुक्तिबोध मूलतः कवि हैं|उनकी आलोचना उनके कवि व्यक्तित्व से ही निःसृत और परिभाषित है।वही उनकी शक्ति और सीमा है।उन्होंने एक ओर प्रगतिवाद के कठमुल्लेपन को उभारकर सामने रखा तो दूसरी ओर नई कविता की ह्रासोन्मुखी प्रवृतियों का पर्दाफाश किया।यहां उनकी आलोचना दृष्टि का पैनापन और मौलिकता अंसदिग्ध है। उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा में तेजस्विता है। जयशंकर प्रसाद,शमशेर,कुंवर नारायण जैसे कवियों की उन्होंने जो समीक्षा की है उसमे पर्याप्त विचारोत्तेजकता है।

काव्य की सृजन प्रक्रिया पर उनका निबंध महत्वपूर्ण है।खासकर फैंटसी का जैसा विवेचन उन्होंने किया है,वह अत्यंत गहन और तात्विक है। उनहोंने नई-कविता का अपना शास्त्र ही गढ़ डाला है।पर वे निरे शास्त्रीय आलोचक नहीं हैं।उनकी कविताओं की ही तरह उनकी आलोचना में भी वही चरमोत्कर्ष है। ईमान और अनुभव की वही पारदर्शिता है, जो प्रथम श्रेणी के आलोचकों में पायी जाती है ।उन्होंने अपनी आलोचना द्वारा अनेक ऐसे तथ्यों को उद्घाटित किया है,जिन पर साधारणतः ध्यान नहीं दिया जाता रहा है। 'जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि' तथा 'व्यक्ति के अंतःकरण के संस्कार में उसके परिवार का योगदान' उदाहरण के रूप में गिनाये जा सकते हैं । डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में - "नई कविता में मुक्तिबोध की जगह वही है,जो छायावाद में निराला की थी । निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया ,जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्याङ्कन हो सके ।"

मुक्तिबोध समकालीन साहित्यिक गतिविधियों से गहरा सरोकार रखनेवाले हस्तक्षेप करने वाले साहित्यकार हैं ।आलोचक के रूप में वे 'क्षण ' को अतिरिक्त महत्त्व देनेवाले रचनाकारों का विरोध करते हैं।वे संवेदना को सदैव जीवन परिस्तिथों से सम्पृक्त करते हैं। उनके चिंतन में काव्य-जीवन वास्तविक- जीवन से अलग या छिटका हुआ नहीं है।काव्य- जीवन और वास्तविक-जीवन का अभेद उनका आग्रह है।वे आलोचना में क्षण को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर उसे वास्तविक - जीवन से अलग या कटा हुआ मानने वालों को सुना कर अपना मताग्रह प्रकट करते हैं। जिन लोगों का विरोध कर रहे हों उनका नाम कम लेते हैं। कभी- कभी लेते भी हैं।

जीवन -जगत को व्यापक फलक पर देखने और अनथक विश्लेषण करते रहना उनकी प्रवृति है ।विश्लेषण और व्याख्या से रुक जाने को वे रचनात्मक -चिंतनात्मक क्षति का कारण मानते हैं । व्यापकता और निरंतर व्याख्या -विश्लेषण वह भूमि है जिसपर वे प्रगतिशीलता का पक्ष लेते हैं ।उनके प्रिय शब्द संयोग, धारणाएं ,ज्ञानात्मक संवेदना,संवेदनात्मक ज्ञान,सामान्यीकरण आदि हैं ।

मुक्तिबोध की आलोचनात्मक दृष्टि के संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं "मुक्तिबोध की आलोचना का स्वर व्यापक, विश्लेषक, व्याख्यापरक एवं वैज्ञानिक है -- आश्चर्यजनक रूप से मौलिक एवं विरोधियों के प्रति सख्त है ।इस अर्थ में वे प्रतिबद्ध वामपंथी आलोचक हैं। समझौता विहीन।"(विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, पृष्ठ - 251) रचना और आलोचना दोनों स्तर पर किसी भी कला कृति की समग्रता में मूल्याङ्कन को महत्त्व देने वाले मुक्तिबोध एक जीनियस लेखक ही नहीं थे अपने समय के बड़े आलोचक भी थे। उन्होंने रचना - प्रक्रिया के अन्तःसूत्रों को समझने के लिए एक नया सिद्धांत और रचनात्मक आलोचना का एक नया स्वरूप प्रस्तुत किया ,जो समस्त भारतीय काव्य-शास्त्र और पश्चिमी आलोचना- सिद्धांत के लिए एक चुनौती है।

मुक्तिबोध से पहले रचना-प्रक्रिया विश्लेषण को लेकर आलोचना की कोई परम्परा नहीं है।निर्मला जैन ने मुक्तिबोध के प्रखर आलोचना -कर्म की पहचान करते हुए टिप्पणी की है कि"नए प्रगतिशील कवि आलोचकों में वे सबसे प्रखर और गंभीर आलोचक थे।किसी कवि में आलोचना की ऐसी चिंतन शक्ति दुर्लभ ही है ।"उनकी आलोचना - दृष्टि समकालीन प्रगतिशील आलोचकों से सर्वथा भिन्न थी। मुक्तिबोध की समीक्षा पद्धति साहित्य - बोध के नए स्तर को उद्घाटित करती है।

आलोचना - कर्म

अज्ञेय ,निर्मल वर्मा,साही आदि के यहाँ सर्जना - क्षण या रचना - जीवन शेष जीवन से अलग या विशिष्ट होता है।वे इस विशिष्टता और भिन्नता को भरपूर रेखांकित करते हैं । इसी आधार पर वे साहित्य को राजनीति से अलग करते हैं। मार्क्सवाद - वामपंथ से प्रभावित साहित्य को विचाधारा की अतिशयता से क्षतिग्रस्त कहते हैं और अपने चिंतक रूप को साहित्योद्धारक या साहित्य- रक्षक होने की घोषणा करते हैं। इस तरह लेखकों की गहरी आलोचना करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं "ध्यान रखने की बात है कि आगे चलकर नयी कविता के डिफेंस में जब प्रगतिवादी दृष्टि का विरोध किया गया ,तब सबसे पहले जीवन और काव्यानुभूति की समांतरता का पैरलिज्म का सिद्धांत स्थापित किया गया।कहा गया कि जीवन में प्राप्त होनेवाली अनुभूतियाँ और सौन्दर्यानुभूति - ये दो अलग- अलग चीज़े हैं। बाह्यतः स्पष्ट सी दिखने वाली इस बात के पीछे एक स्पष्ट -अस्पष्ट राजनितिक उद्देश्य था। वह यह कि कवि का काव्य -जीवन और वास्तविक - जीवन, इन दो में से अविच्छिन्नता और मौलिक एकता को कुछ कुहरील कर दिया जाय। यह सिद्धांत एक बहुत ही खतरनाक मान्यता है । नयी कविता के बुर्ज से शीत-युद्ध चलाने वाले नीति - नियामकों का वह एक सोद्देश्य मानसिक विक्षेप है।" मुक्तिबोध का मानना है कि कवि का काव्य- जीवन और वास्तविक जीवन इन दोनों में अविच्छिन्नता और मौलिक एकता है । मुक्तिबोध के समूचे काव्य -चिंतन का यह आधार है ।इससे वे कहीं -कभी नहीं डिगते। आचार्य रामचंद्र शुक्ल से मुक्तिबोध जो मतैक्य है,वह इसी आधार पर है।आचार्य शुक्ल ही नहीं,वे अपने समर्थन और प्रगतिवाद- विरोधी विचारकों के खंडन में भारतीय साहित्य चिंतन की भी बात करते हैं।उनके शब्दों में -"ध्यान में रखने की बात है कि भारतीय साहित्य- चिंतन में काव्य - सौंदर्य के संबंध में विस्तृत और वैविध्यपूर्ण चर्चा है,किन्तु नयी कविता ने पैतृक सम्पति भी नहीं ली है।"

भारतीय साहित्य चिंतन परम्परा का हवाला देना, मुक्तिबोध को समझने के लिए ध्यातव्य है। वे विवेचक हैं।वे अपनी परम्परा के तोड़क नहीं।

आधुनिक साहित्य में क्षण की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण मानी गयी है।और इस पर तरह से चिंतन भी हुआ है।अज्ञेय जैसे कवि क्षण को सिर्फ अनुभव के एक विशिष्ट पल से जोड़कर देखते है।वे छायावाद और नयी कविता में मौजूद समानता की तलाश करते हुए लिखते हैं-"मैं तो यह भी कहना अनुचित नहीं समझता कि छायावाद की 'अनंत की प्यास ' और नयी कविता का 'क्षण का दर्द ' दोनों मूलतः अनुभूति की प्राथमिकता और आत्यंतिकता पर बल देना चाहते हैं|"(अज्ञेय, आत्मनेपद,पृष्ठ-139)

मुक्तिबोध क्षण और अनुभूति ,दोनों को कवि के जिए हुए वास्तविक जीवन का ही अंग मानते हैं । वह जीवन का ही खंड है और उसकी विशिष्टता जीवन की व्याप्ति में समाहित है । कवि - कर्म जीवन - कर्म है ।वह विशिष्ट इस अर्थ में है कि सभी लोग वह नहीं कर सकते ,लेकिन उसका स्रोत और उसकी क्षमता जीवन से ही प्राप्त होती है ।मुक्तिबोध संवेदना पर विचार करते हुए उसे हमेशा जीवन -परिस्थितियों से जोड़ते हैं। जीवन - परिस्थितिओ से जोड़ने का मतलब जीवन की अनेक असंख्य- विध स्थितियों ,समानताओं , असमानताओं,सुख,दुःख,वर्ग,जाति आदि से जोड़ना है।काव्य की व्याप्ति और गंभीरता ,मार्मिकता,अनुभूति-सब जीवन स्थितियों के असंख्य विध जोड़ -तोड़ से संबंधित हैं।वे उन्हीं से उपजती हैं (हाँ , शब्दों ,लय, छंद, आरोह, अवरोह, के माध्यम से)और उन्हीं के विश्लेषण से समझ में आ सकती हैं।

सृजन - क्षण एक क्षण की अभिव्यक्ति नहीं है। वह एक क्षण में अनुभव,ज्ञान,और संवेदना के इतिहास की उपज है।मुक्तिबोध उस एक क्षण की आंतरिक असीमता की खोज करना चाहते हैं और फिर उसे बाह्य असीम में समर्पित कर देना चाहते हैं जिससे

आधुनिक भौतिक - विज्ञान एटम का आंतरिक असीम खोजता है ,वैसे मुक्तिबोध सौंदर्य - क्षण में जीवन की असीमता देखते हैं। उसको व्याख्यायित , विश्लेषित और मूल्यांकित करने का प्रस्ताव करते हैं।

मुक्तिबोध के अनुसार गरीब- वर्ग या निम्न मध्य- वर्ग के होने के कारण अधिकांश हिंदी लेखकों को गरीब की मनोदशा की अधिक जानकारी होती है । पढ़ने-लिखने से वे अद्यावधि जानकारी से परिचित होते हैं । विचार और अनुभव ज्ञान की प्राप्ति का अनुरोध होता है कि वे अर्जित ज्ञान को कार्यान्वित करें । किन्तु यह जीवन - यात्रा यानि कार्यगत यात्रा और रचनात्मक प्रक्रिया आसान नहीं । मुक्तिबोध के शब्दों में -"बैठकर प्रोफेसरी करने वाला व्यक्ति चार अख़बार पढ़कर गप्प लगा सकता है , अमेरिका और रूस तक के बारे में हाँक सकता है लेकिन समाज की गलियों में रहनेवालों के संघर्ष के मनोविज्ञान को वह कत्तई नहीं समझ सकते ।"

मुक्तिबोध के लिए व्यावहारिक जीवन-यात्रा और कवि-व्यक्तित्व यात्रा लगभग एक या अन्योन्याश्रित हैं। यानि आत्मगत यथार्थ संश्लिष्ट है। यह यात्रा उसी समाज में करनी है और होती है जो वर्ग - विभक्त है ,जहां सुघर ,अवसरानुकूल ,समझौतावादी यश और प्रतिष्ठा अर्जित करने की प्रतिस्पर्धा है।इसी से पारिवारिक सुख - शांति और विषमता,असंतोष,कलह जुड़ा और निर्धारित - नियंत्रित है।

मुक्तिबोध के आलोचना - साहित्य में ' कामायनी :एक पुनर्विचार ' की विशेष चर्चा होती है ।मुक्तिबोध ने 'कामायनी' का अध्ययन अनेक वर्षों तक किया था । किसी और कवि या साहित्यकार का उन्होंने इतना विधिवत अध्ययन नहीं किया। मुक्तिबोध ने 'कामायनी ' को फैंटसी माना है। इसके पहले किसी ने 'कामायनी 'के अध्ययन में फैंटसी शब्द का उपयोग तक नहीं किया था।यह उनकी मौलिक स्थापना है ।इस प्रसंग में मुक्तबोध ने फैंटेसी के लक्षण भी बताएं हैं। ये लक्षण 'कामायनी ' पर घटित होते हैं - "कामायनी उस अर्थ में कथा - काव्य नहीं है कि जिस अर्थ में ' साकेत ' है। 'कामायनी' की कथा एक फैंटेसी है।जिस प्रकार एक फैंटेसी में भी निगूढ़ वृत्तियों का,अनुभूत जीवन-समस्याओं का, इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन - स्थितिओं का प्रक्षेप होता है ,उसी प्रकार 'कामायनी ' में भी हुआ है ।" मुक्तिबोध मानते है कि मनु प्रसाद की ' आभ्यंतर ग्रंथि ' का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है । मुक्तिबोध के सर्जनात्मक गद्य में कथ्य उलझ जाता है । लेकिन यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रसाद ने स्पष्टतः मनु , श्रद्धा , इड़ा को पात्र बनाकर वैदिक युग की कथा कही है किन्तु उनके और उनकी आभ्यांतर ग्रंथि का विषय ही ' कामायनी ' का कथ्य है । मुक्तिबोध ये बात कई बार दुहराते हैं कि प्रसाद की अपनी निजी समस्याएं ,विलासपूर्ण जीवनशैली 'कामायनी' में पात्रों द्वारा व्यक्त हुई हैं। प्रसाद जी के पास ऐतिहासिक बुद्धि थी ,किंतु मानव-इतिहास-सभ्यता के इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं था ।

मुक्तिबोध कामायनी की आलोचना मार्क्सवादी दृष्टि से करते हैं ।किसी कृति को एक ही दृष्टि से वह भी यांत्रिक ढंग से देखने के जितने खतरे हो सकते हैं ,वे 'कामायनी :एक पुनर्विचार ' में हैं। मार्क्सवादी दृष्टि से आलोचना करना अधिक वैज्ञानिक इसलिए होता है क्योंकि ,वह सिद्धांत को वस्तुस्थिति से मिलाती चलती है । विश्वनाथ त्रिपाठी 'कामायनी ' पर मुक्तिबोध की आलोचना दृष्टि की आलोचना करते हुए कहते हैं कि 'कामायनी' में आनंदवाद का ढांचा और 'कामायनी :एक पुनर्विचार' में मार्क्सवाद की यांत्रिक आलोचना ,दोनों मिल गए हैं। संभवतः इसीलिए 'कामायनी'की काव्य- छटा पर मुक्तिबोध ने विचार नहीं किया।कोई काव्य सही विचारधारा के अभाव में भी सुंदर हो सकता है।इसे समझने -समझाने की संभावना ही नहीं रह गयी। काव्य - सौंदर्य पर विचार न कर पाने की सफाई जरूरी हो गयी है ।मुझे लगता है कि 'कामायनी:एक पुनर्वविचार ' मुक्तिबोध की एक पारम्परिक रचना है । उसमें वह परिपक्वता नहीं है जो उनके परवर्ती समीक्षा - कर्म में दिखलाई पड़ती है ।

आज पूंजीवादी - साम्राज्यवादी दोहन लीला के चलते पर्यावरण ,जल ,पृथ्वी ,वायु ,आकाश - महाभूतों के ही विनाश की जो भयावहता सामने है और जिसका प्रभाव भी कविता पर पड़ रहा है ।उसे देखते हुए 'कामायनी' पर एक और पुनर्विचार की जरुरत है ।कामायनी में प्रकृति की निर्णायक शक्ति और इड़ा सर्ग में मनु का यह कथन :-**"मैं तो**

अबाधगति मरूत सदृश हूँ चाह रहा अपने मन की ,वह ज्वलनशील गतिमय पतंग।" वह (मनु आधुनिक साम्राज्यवादी ग्लोबल यानि सर्वाधिकार चाहने वाला मन) सूर्य है और उसके चारों ओर अंधकार है ।उसने सबसे नाता तोड़ लिया है।प्रसाद ने इसे सूर - संस्कृति - मानसिकता से सम्बद्ध किया है।सुरायान के कारण वे सूर कहलाये थे । इड़ा की प्रेरणा से मनु का सोचना है:--' तो तुम ही हो अपने सहाय ! ' यह केवल मैं का आत्मकथन है। दूसरी ओर महाकाल और इतिहास की हँसी:--

"हँस पड़ा गगन वह शून्य लोक

जिसके भीतर बसकर उजड़े कितने ही जीवन मरण शोक

हँस पड़ी उषा प्राची नभ में देखे नर अपना राज - काज ।"

प्रकृति 'चिंता-सर्ग' के प्रारंभिक अंश में भी हँसती है - मनु की मर्मवेदना और करुणा- विकल कहानी पर :

"निकल रही थी मर्म वेदना करुण विकल कहानी - सी

वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती -सी पहचानी -सी ।"

प्रकृति व्यंग्य कर रही है-देव अपने को दुर्जेय,अमर समझते थे- उनकी इस मूर्खता पर, अज्ञानता पर चिंताग्रस्त मनु का कथन है :

"प्रकृति रही दुर्जेय पराजित हम सब थे भूले मद में ।"

क्या प्रकृति और सर्वाधिकारी-साम्राज्यवादी मानसिकता का द्वंद्व अपने निर्णायक रूप में आज फिर सामने नहीं उपस्थित है? ' कामायनी ' की इस प्रासंगिकता को क्या अस्वीकार किया जा सकता है? 'कामायनी' को फैंटसी कहना मुक्तिबोध का हिंदी आलोचना में योगदान है जिसने 'कामायनी' का नया पाठ प्रस्तुत किया ।

मुक्तिबोध ने उर्वशी के कामाध्यात्म दर्शन का विरोध किया है ।उन्होंने कहा है कि उर्वशी की रचना का समय सिद्धों के महासुखवाद का समय नहीं है । मतलब यह कि आज का सुसंस्कृत मनुष्य इतना कामकेन्द्रित ही नहीं हो सकता। उर्वशी का कामाध्यात्म केवल ऐश्वर्यसम्पन्न विलासी व्यक्तिओं की जीवन - शैली पर घटित हो सकती है।उन्होंने गंधमादन पर्वत पर उर्वशी - पुरुरवा के प्रणय -प्रसंग के दौरान वार्तालाप पर घोर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा कि यह भाषा आडंबरपूर्ण और अस्वाभाविक है। मनुष्य काम-सुख में लीन होते हुए भी इस भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है।

मुक्तिबोध ने त्रिलोचन,सुभद्रा कुमारी चौहान ,शमशेर आदि की कविताओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं --समीक्षा के रूप में।'कामायनी ' पर या सौन्दर्यक्षण पर विचार करते समय उनका गद्य प्रायः जटिल वाक्य - विधान वाला है।उसमें पुनरुक्ति भी है लेकिन अपने समकालीन कवियों पर लिखते समय उनका गद्य आश्चर्यजनक तौर पर सहज स्पष्ट और सुविचारित और विशेषताग्रही है।

त्रिलोचन के काव्य संकलन पर विचार करते हुए वे लिखते हैं कि त्रिलोचन ने पारम्परिक शैली में अपनी निजी मौलिकता व्यक्त की है। त्रिलोचन की आडंबरहीन और गैर-विज्ञापनी शैली को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि उनकी कविताओं में किसान की विशेषता और स्वाभिमान छिपा हुआ है । उनकी प्रगतिशीलता उनके जीवन -संघर्ष से मंज -घिसकर तैयार हुई है। वे अपने अनुभवों को नैतिकता के मानदंडों में बांधने का उद्योग करते हैं ।प्रकृति उनके लिये बिम्बों का साधन नहीं बल्कि जीवन की वास्तविकता है। त्रिलोचन अकेलेपन की जो अभिव्यक्ति करते हैं ,वह छायावादी ढंग की नहीं , जीवन -यात्रा के अनुभव की कथा का रूप है |मुक्तिबोध लक्षित करते हैं कि भाव को बुद्धि द्वारा अनुशासित रखना त्रिलोचन की बहुत बड़ी विशेषता है ।

सुभद्रा कुमारी चौहान की विशेषता बताते हुए मुक्तिबोध समकालीन कविता की ऐसी कमी की बात करते हैं जिस ओर ध्यान दिया गया होता तो हिंदी कविता के पाठकों और उसकी लोकप्रियता का इतना टोटा न पड़ता। लेकिन बात सिर्फ लोकप्रियता की कमी की नहीं ,जातीय - पारिवारिक भावना के भाव - संचय या अभिव्यक्ति की है। मुक्तिबोध का कहना है "जीवन के साक्षात् विविध प्रसंगों की भूमिकाओं और उसके सन्दर्भों का त्याग आखिर क्यों ? क्या काव्य की यूनिवर्सल अपील इससे खत्म हो जाती है? माँ,पिता,भाई के ऊपर कविताओं की कमी --इससे सिद्ध होता है कि हमारे कविओं का जीवन अनुभव - सम्पन्न और भाव- सम्पन्न होते हुए भी उनके आत्मविद्ध पिपासाओं ने अभिव्यक्ति के क्षेत्र से उन-उन अनुभवों को हटा दिया है ।जीवन के असंख्य वास्तविक

भावानुभवों को काव्योचित महत्त्व नहीं दिया गया।"

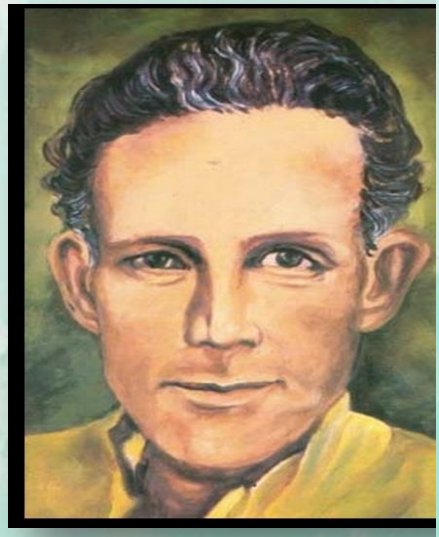

'यूनिवर्सल चिंता ','आत्मविद्ध पिपासा','जीवन के वास्तविक भावानुभवों की उपेक्षा' ऐसे शब्द हैं जिनसे अनुभूति की प्राथमिकता ,आत्माभिव्यक्ति ,'सौंदर्य का क्षण ' की व्याख्या की जा सकती है और नयी कविता की कई गाँठों को समझा जा सकता है।यह उनकी आलोचना का महत्व है । शमशेर बहादुर सिंह पर उनकी लिखी हुई टिप्पणी शमशेर की आलोचना है। मुक्तिबोध शमशेर के बारे में लिखते हैं –

" शमशेर न केवल रूप,रस ,गंध की संवेदनाएँ पहचानते हैं --यह मामूली बात है -वरन वे संवेदनाओं के रूप, स्पर्श , गंध , का चित्रण करते हैं।वास्तविक संवेदनाओं का चित्रण हिंदी में बहुत कम हुआ है। शमशेर का शब्द-संकलन अत्यंत सचेत और सम्वेदनानुगामी होता है ।शमशेर का संवेदन - ज्ञान और संवेदन - चित्रण अद्वितीय है ।"मुक्तिबोध के विचार से ' शमशेर ' मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि हैं । जाहिर है कि मुक्तिबोध इस पर लिखने से बचे हैं :या उस समय तक शमशेर की परवर्ती कविताएँ आयीं नहीं थीं । आज तो लगता है कि शमशेर नारी देह के प्रमुख कवि हैं।सुमित्रानंदन पंत के विषय में उनकी राय है कि वे ऐतिहासिक अनुभूति के माध्यम से मनुष्य सूर्य के विस्फोटकारी केंद्र से सम्बद्ध हो जाता है ।मुक्तिबोध का तात्पर्य यह है कि पंत जी के हृदय का विस्तार होता आया है।उनका हृदय जन गण के साथ रहा है ।इसी से उन्हें ऐतिहासिक अनुभूति प्राप्त हुई है।ऐतिहासिक अनुभूति मनुष्य को स्थिर या जड़ नहीं बनाये रहते हैं।वे पुराने नहीं पड़ते। मुक्तिबोध ने पंत विषयक लेख में भी उद्धरण कम प्रस्तुत किये हैं। इससे उनके कथन समर्थित और पुष्ट नहीं होते।मुक्तिबोध लिखते हैं :

" जहाँ-जहाँ उनके (पंत) काव्य में संवेदना की ताजगी है, भाव चमकने लगते हैं ।ऐसे क्षणों में जब वे छंद की चौखट में सारभूत जीवन तथ्य को जमा देते हैं तब भी उस कविता में एक खास काट का ज्यामितिक सौंदर्य उत्पन्न हो जाता है--इसलिए की उसमें भी एक ताजगी होती है ।....."

वास्तव में मुक्तिबोध अचूक मर्मग्राहिणी क्षमता के आलोचक हैं।कविता की भाँति आलोचना में भी वे जीवनानुभवों की व्याख्या और विश्लेषण को स्थान देते हैं।अपनी साहित्यिक नवीन अवधारणाओं के माध्यम से उन्होंने हिंदी रचना और आलोचना के रसास्वादन में फर्क पैदा किया तथा पाठकों और आलोचकों के मानस को झकझोर कर रख दिया।

सन्दर्भ - ग्रन्थ :--

1. कामायनी एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध
2. आत्मनेपद : स .ही. वा. अज्ञेय
3. हिंदी - आलोचना : विश्वनाथ त्रिपाठी
4. कामायनी, जयशंकर प्रसाद
5. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ.बच्चन सिंह

3. विज्ञानः- आध्यात्मिकता का एक विकल्प?

आनंद,
बी.ए.ऑनर्स इतिहास
तृतीय वर्ष

मनुष्य एक सामजिक प्राणी है" यह वाक्य मानव के सामाजिक एवं भौतिक दोनों पक्षों को परिलक्षित करता है, एक व्यक्ति विशेष के तौर यह आवश्यक हो जाता है, कि मानव समाज का निर्माण करे एवं एक इकाई बनकर अपनी तमाम नैतिक जिम्मेदारियों एवं कार्यों का निर्वहन करे, किन्तु मानव के साथ जो एक अन्य पक्ष मजबूती से बना रहता है, वह है उसका "अध्यात्म"। अध्यात्म एक व्यक्तिपरक अवधारणा है जिसका निर्माण व्यक्ति अपने परिवेश, समय और समाज मे व्याप्त अवधारणाओं के आधार पर करता है, इसकी शुरुआत प्रायः समाज की एक न्यूनतम इकाई "परिवार" नामक संस्था से होती है। व्यक्ति का अध्यात्म उसके परिवार एवं लोगों तथा उसके संबंधों और साथ ही साथ उनसे प्राप्त अनुभवों पर आधारित होता है, और इसी के अनुसार वह अपने अध्यात्म का चुनाव करता है। जिसमें धर्म, विश्वास, कर्मकांड, इत्यादि शामिल हैं। प्राचीन, मध्य, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक काल में भी, इसका अस्तित्व बना हुआ है किन्तु समय के साथ इसमें कई परिवर्तन देखने को मिलते है। किन्तु इसमें बदलाव का सबसे प्रखर कालखंड मध्य काल ही रहा है, इसी समय धर्म,भौगोलिक खोजों एवं खगोल संबंधी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, और यह सब हुआ "विज्ञान" के कारण। इन्हीं वैज्ञानिक खोजों एवं क्रांति के फलस्वरूप यूरोप और साथ ही साथ सम्पूर्ण विश्व में धर्म एवं अध्यात्म की नई लहर की शुरुआत हुई जिसने अध्यात्म और विज्ञान के संबंधों पर यदि गौर किया जाये तो हमारे सम्मुख ऐसे कई उदाहरण हैं जो की इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं, अध्यात्म एक विश्वास है, जो कि धर्म रूपी भी हो सकता है, इसे समझने के लिए एक उदाहरण पर गौर करना आवश्यक है,

"ईसाइयों की अध्यात्म की अवधारणा के अनुसार पृथ्वी पापों से भरी हुई है और पापों की अधिकता के कारण वह स्थिर है। पृथ्वी, ब्रह्माण्ड (universe) के बीच में स्थिर है, जिसके चारों ओर खगोलीय ग्रह (Celestial Planets) घूम रहे हैं, किन्तु इस आध्यात्मिक अवधारणा का खंडन, कोपरनिकस(1473-1543) ने किया, जिसमें उन्होंने वैज्ञानिक प्रयोगों अध्यात्म पर समाज के दृष्टिकोण को बदल दिया। हालांकि विज्ञान भी पूर्ण रूप से सार्वभौमिक सत्य नहीं है किन्तु फिर भी तुलनात्मक रूप में यह सम्पूर्ण विश्व द्वारा किसी अन्य वस्तु, अवधारणा, विचार से अधिक स्वीकृत माना गया है, जिसने समाज को तर्क शक्ति प्रदान की है और चूंकि समाज द्वारा "विज्ञान" को स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है और प्राकृतिक परिवर्तनों को भी "विज्ञान" की दृष्टि से समझा जाता है अतः यह कहना सर्वथा उचित ही है कि "विज्ञान" व्यक्तिगत न होकर सार्वभौमिक है।

द्वारा यह स्पष्ट किया की पृथ्वी समेत सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। कोपरनिकस एक निष्ठावान ईसाई थे और वह इस बात से भयभीत थे कि उनकी इस नई खोज से परंपरावादी ईसाई धर्माधिकारियों में घोर -प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है, यही कारण था कि वह अपनी पाण्डुलिपि (De Revolutionibus - परिभ्रमण) को प्रकाशित नहीं कराना चाहते थे। जब वह अपनी मृत्यु -शैया पर पड़े थे तब उन्होंने यह पाण्डुलिपि अपने अनुयायी 'जोशिम रिटिकस' (Joachim Rheticus) को सौंप दी। उनके इन विचारों को ग्रहण करने में लोगों को थोड़ा समय लगा। काफ़ी समय बाद यानि आधी शताब्दी से अधिक समय बीतने पर खगोलशास्त्री 'जोहानेस कैप्लर' (Johannes Kepler, 1564-1630), तथा 'गैलीलियो गैलिली' (Galileo Galilei, 1564-1642) ने अपने लेखों द्वारा 'स्वर्ग ' और 'पृथ्वी ' के अंतर को समाप्त कर दिया।

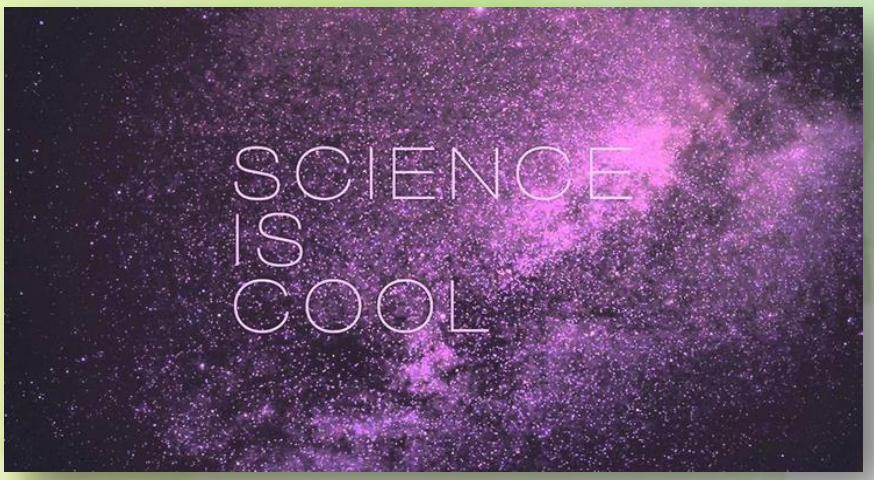

गैलीलियो ने एक बार टिप्पणी की कि बाइबल जिस स्वर्ग का मार्ग आलोकित करता है वह स्वर्ग किस प्रकार चलता, उसके बारे में कुछ नहीं बताता। अतः इन विचारको ने हमें यह बताया कि विज्ञान विश्वास से इतर, अध्ययन, अवलोकन एवं प्रयोगों पर आधारित है। जैसे-जैसे इन वैज्ञानिकों ने ज्ञान की खोज का रास्ता दिखाया वैसे-वैसे भौतिकी, रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रयोग और अन्वेषण कार्य बहुत तेजी से पनपने लगे, जिन्होंने इन सभी क्षेत्रों में उन सभी अवधारणाओं का स्वरूप बदल दिया, जिसे अध्यात्म और धर्म का आश्रय प्रदान था। इतिहासकारों ने मनुष्य और प्रकृति के इस नए दृष्टिकोण को "वैज्ञानिक क्रांति" (Scientific Revolution) का नाम दिया, जिसके उपरांत सभी विशेष संदर्भों में विज्ञान एवं इसकी तर्कशक्ति का प्रयोग किया जाने लगा।

इस तरह विज्ञान ने सम्पूर्ण विश्व मे "व्यक्ति" और " ब्रह्माण्ड" के मध्य जो अध्यात्म स्थापित था, और जो कि केवल और केवल पूर्व अवधारणाओं एवं विश्वास पर आधारित था उसका स्वरूप बदल दिया, और उसके स्थान पर वैज्ञानिक प्रयोगों को प्राथमिक बना दिया। विज्ञान ने अध्यात्म के सामाजिक पक्ष में तो बदलाव किये ही साथ ही, राजनीतिक पक्ष में कुछ विशेष परिवर्तनों को जन्म दिया, जिसके अंतर्गत यूरोप में धर्म सुधार आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसने आध्यात्मिक और प्रशासनिक कार्यों का निर्वाह करने वाले पादरी वर्ग को भी प्रभावित किया और समाज में एक नए शिक्षित वर्ग जो कि विज्ञान और तर्क के दृष्टिकोण का प्रयोग करता था, की स्थापना की। विज्ञान ने अध्यात्म से संबंधित उन सभी पक्षों में बदलाव किया जो किसी भी रूप में वैज्ञानिक प्रयोगों के अनुकूल नहीं थे, इस प्रकार व्यक्ति, समाज, प्रशासन, संस्था, संस्कृति सभी के द्वारा अध्यात्म के विकल्प के रूप में विज्ञान का प्रयोग किया जाने लगा। राज्यों ने भी आध्यात्मिक और धार्मिक लोगों के स्थान पर बुद्धिजीवी वर्ग को संरक्षण प्रदान किया।

विज्ञान का अध्यात्म के विकल्प के रूप में स्थापित होने के पीछे एक बड़ा कारण यह था कि, विज्ञान के पास उन सभी प्रश्नों के तार्किक उत्तर उपलब्ध थे, जिन्हें सिद्ध भी किया जा सकता था, अध्यात्म के पास सिर्फ विश्वास, पूर्व अनुमान और अवधारणाएं ही थीं जिन्हें

सिद्ध कर पाना एक बड़ी चुनौती थी। समाज और राज्य द्वारा भी विज्ञान को स्वीकृति मिली क्योंकि इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सकता था।

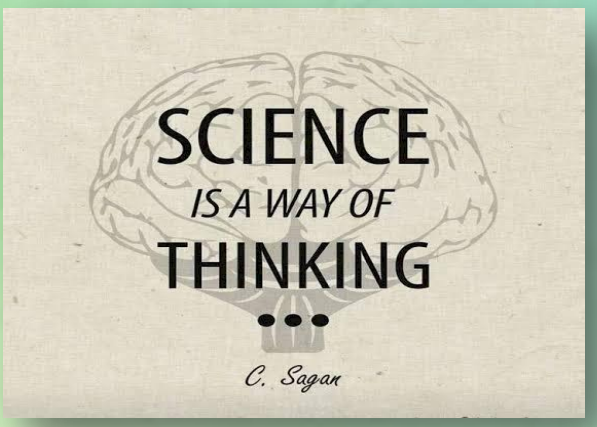

अतः विज्ञान ने सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त कर, अध्यात्म जो की व्यक्तिपरक अवधारणा थी, उसे दोयम दर्जे का बना दिया। व्यक्तिपरक अवधारणा को, सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त करने के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है, और प्रामाणिक वही हो सकता है जिसे प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता हो। एक सार्वभौमिक विचार (विज्ञान) को व्यक्ति द्वारा स्वीकार किया जा सकता है और उस परिस्थिति में तो विशेष रूप से जब उसे सिद्ध भी किया जा सकता हो। किन्तु एक व्यक्तिगत विचार को बिना प्रमाण के स्वीकृति प्रदान नहीं की जा सकती, यही बुनियाद है कि अध्यात्म जो कि व्यक्तिपरक अवधारणा है उसके विकल्प के रूप में, विज्ञान का प्रयोग किया जा सकता है।

संदर्भ:-

विश्व इतिहास के कुछ विषय(इन.सी.ई.आर.टी. किताब कक्षा 11)

4.मृत्युशय्या पर क्षेत्रीय भाषाएँ: एक उत्तरपूर्वी नज़रिए से

गुंजन दास
बी. ए.ऑनर्स राजनीति विज्ञान
द्वितीय वर्ष

बचपन के सभी भयों में से सबसे भयानक भय होता था अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालयों में जाने का। इस भय का कारण पढ़ाई या कुछ और बातें नहीं थीं बल्कि अंग्रेज़ी की जगह अपनी भाषा में बात करने की वजह से जो सज़ा मिलती थी वह होती थी। अंग्रेज़ी को हमेशा ही बाकी भाषाओं से श्रेष्ठतम और योग्यतम समझा जाता था, अच्छे वेतन वाली नौकरी पाने का तो जैसे यह एक मात्र ज़रिया हो।

देखा जाए तो यह भय जायज़ भी था, हो भी क्यों न मेरी मातृभूमि में ही मेरी मातृभाषा में बात करना वर्जित था। यह बात ब्रिटिश शासनकाल की नहीं बल्कि अभी इक्कीसवीं सदी की ही है। अंग्रेज़ी भाषा को उत्कृष्ट और अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति और परंपरा को उसके आगे हीन समझने के कारण अध्यापकों और अभिभावकों के मन में एक भय बैठता गया जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता गया। परिणाम के तौर पर लोकमन में अपनी ही भाषा के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी।यह हमारे समय की सबसे बड़ी भाषाई दुर्घटना है। इस दुर्घटना की सबसे पहली और गहरी चोट देश के भीतर मौजूद विभिन्न समाजों तथा समाज और व्यक्ति के आपसी रिश्ते को पहुँची।

ब्रिटिश शासनकाल के शुरुआती वर्षों में ही भारत की भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय भाषाओं को यहाँ के ही लोगों की नज़रों में हीन साबित करने की एक मुहिम शुरू हो गयी थे। इस मुहिम को 'फिल्ट्रेशन थ्योरी ऑफ एड्युकेशन'[1] अर्थात् शिक्षा का निस्पंदन सिद्धांत का नाम मिला जिसे थॉमस मकॉले(1835में)'अंग्रेज़ी शिक्षा अधिनियम 1835' की ज़रूरत और उसके उद्देश्य को पेश करते हुए कहते हैं कि ब्रिटिश शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसे वर्ग को पैदा करना है "जिसका खून और रंग तो भारतीय हो लेकिन विचार, सिद्धांत और ज्ञान अंग्रेज़ी हो।"[2] आगे चलकर मैकाले के इस बात का गहरा प्रभाव उत्तर पूर्वी राज्यों में देखने को मिलता है, विशेषतः असम में, जहाँ अंग्रेज़ी के साथ-साथ बंगाली भी विद्यालयों में अध्ययन की भाषा सिर्फ इसलिए बना दी गयी ताकि असमी लोगों का एक ऐसा तथाकथित उत्कृष्ट वर्ग बनाया जा सके जो अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति बिना सवाल जवाब किए निष्ठा पूर्ण आचरण रखे और अपनी ही भाषा, परंपरा, सभ्यता और संस्कृति से अलग हो जाए। 1836 से 1873 तक हर सरकारी काम विदेशी भाषा में होता था, विदेशी भाषा को ही आधिकारिक भाषा माना जाता था उस समय इस तथाकथित अभिजन वर्ग की ओर से इसके खिलाफ़ एक भी आवाज़ नहीं उठी।[3]

यदि 1947 के बाद के भारत की भी बात करें तो क्षेत्रीय भाषाओं को महत्त्व देने और अध्ययन का माध्यम बनाने के लिए अनेक प्रयास किये गए, राजकीय विद्यालय इसके अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन इन प्रयासों के बाद भी सरलतापूर्वक कोई बदलाव नहीं दिखा। असम को ही देख लीजिये,76 मुख्य भाषाएँ,48 अन्य भाषाएँ और बोलियाँ[4] होने के बावजूद असमी सब पर भारी पड़ी और 26 सितंबर, 1947 को राज्य सरकार ने इसे

उन विद्यालयों में अध्ययन की दूसरी भाषा का दर्जा प्रदान कर दिया जहाँ यह पहली भाषा नहीं बन सकती थी।[5] उपराष्ट्रीय स्तर पर अन्य भाषाओं के लोग (जैसे, तिबेटो-बर्मीज़ और ऑस्ट्रो-अशियाटिक) प्रत्याशित रूप से अपनी भाषा के प्रति अत्यधिक समर्पित हो गए जिस कारण वे अध्ययन की भाषा असमी की जगह अंग्रेज़ी चुनने लगे, उन्हें अंग्रेज़ी या हिंदी चुनना ज़्यादा सरल और उचित लगा।[6]

परिणामस्वरूप आजादी के बाद दो बातें एक साथ दिखाई देती हैं।पहली बात तो यह कि असम का जनजातीय समाज अपनी भिन्न पहचान के लिए भाषाई तौर पर जागरूक होती है और अपनी भाषा के प्रति उसकी प्रतिबद्धता बढती है। दूसरी बात जो ठीक इसके विपरीत है वह यह कि आजादी के कुछ वर्षों बाद ही असामी भाषा और असमी भाषा में अध्ययन कराने वाले शैक्षिक संस्थानों (निजी एवं सरकारी दोनों) का पतन देखने को मिलता है,1990 के बाद यह प्रवृत्ति तेजी से बढाती है - 1990 के बाद भाषाई दृष्टि से शायद यही वैश्वीकरण है। जोसेफ नाए (Joseph Nye)[7] ने जिस समय में अमेरिकी दादागिरी के नये रूप को 'सॉफ्ट पॉवर' (Soft Power) कहा था उसी समय भारत में अमेरिकी संस्कृति के लिए एक अलग ही प्रेम और रुचि उमड़ रही थी। रंगीन टी.वी., शॉपिंग मॉल्स, मोबाइल फ़ोन (स्मार्ट फोन भी),आदि की बढ़ती लोकप्रियता के साथ अमेरिकी सभ्यता एवं जीवनशैली ने भी लोकमन में एक जगह बना ली और इसका अच्छा-खासा प्रभाव भारत के मध्यम वर्ग के परिवारों पर देखने को मिला। यदि पश्चिमी सभ्यता को एक चुंबक समझा जाए तो भारतीय शहरी जनता को लौह कण कहना बिल्कुल भी अनुचित नहीं होगा, जिसका चुंबक के प्रति आकर्षण इतना ज़्यादा था कि वह अपने अस्तित्व का आधार, अपनी परंपरा और संस्कृति को ही भूल गया।

इसके दो परिणाम सामने आए। पहला, इस वैश्वीकृत दुनिया में अभिभावकों ने अपने बच्चों को दूसरी बार विचार किए बिना ही अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालयों में भेजना शुरू कर दिया। उनको बस यह आशा थी कि उनके बच्चे अंग्रेज़ी में अध्ययन करने से और अधिक सक्षम और समझदार बन सकेंगे। इतना ही नहीं बल्कि ऐसा करने से उन्हें इस तथाकथित उत्कृष्ट भाषा में उत्तीर्णता भी हासिल होगी और आगे इसका लाभ किसी पश्चिमी देश या किसी विदेशी कंपनी में अच्छी वेतन वाली नौकरी के रूप में मिलेगा। इक्कीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालयों में पढ़ने की अभिलाषा और माँग दोनों ही तेज़ी से आकाश जितनी ऊँचाई छूने लगी। इन विद्यालयों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि अभी-अभी गाँव से शहर पहुँचे एक गरीब घर के लड़के से लेकर एक अमीर घराने की लड़की तक सभी सामाजिक और आर्थिक तबके के लोगों के लिए इनमें जगह थी। "असम गैर सरकारी शैक्षिक संस्थान (विनियमन और प्रबंधन) अधिनियम, 2006" (Assam Non-Government Educational Institutions Regulation & Management Act, 2006)[8] के द्वारा इन निजी विद्यालयों को खोलने के लिए जो शर्तें घोषित की गयी थीं उन्हें पूरी तरह नजर अंदाज कर दिया गया। अतः अब एक घर के छोटे से कमरे को भी इन विद्यालयों में बदला जा सकता था।

इन विद्यालयों की माँग में बढ़त अपने बच्चों को हर चीज़ अंग्रेज़ी और पश्चिमी ढंग से प्रदान करने की अभिलाषा से आई। यह अभिलाषा इतनी बढ़ गयी कि कक्षाओं में असमी भाषा में बात करना भी वर्जित हो गया ताकि अभिभावक अपने बच्चों का जल्दी से जल्दी अंग्रेज़ीकरण होते हुए देख सकें। यही मेरे उस भय का संदर्भ है जिसका ज़िक्र मैंने इस लेख की शुरूआत में किया था, अतः मैंने कभी अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालय में पढाई नहीं की।

एक परिणाम यह भी हुआ कि धीरे-धीरे सरकारी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में अध्ययन कराने वाले विद्यालयों की एक दर्दनाक मृत्यु होने लगी। इस कारण 1950 और 1960 के प्रख्यात माध्यमिक विद्यालय जिन्होंने असम को कई विद्वान, कलाकार आदि दिए हैं आज जीर्ण-शीर्ण स्थिति में खड़े हैं। क्षेत्रीय भाषाई विद्यालयों का पतन, असमी लोगों का असम से पलायन, जनजातियों के चेतित होने और गैर कानूनी तरीके से अप्रवासियों के आने जैसे कारणों से 1971 में 61% असमी बोलने वालों की संख्या 2011 में 48.3% तक घट गयी और निरंतर घट रही है।[9] शिक्षा के अत्यधिक व्यापारीकरण, गैर कानूनी तरीके से निजी विद्यालयों के खोले जाने, क्षेत्रीय भाषाई विद्यालयों के पतन और राज्य सरकार का विद्यालयों के प्रति कम ज़िम्मेदार होने से भारत की क्षेत्रीय भाषाएँ खतरे में आ चुकी हैं। मेरे कई असमी साथी आज सही से असमी पढ़ना और लिखना नहीं जानते, जो साथी सिर्फ बोल पाते हैं उन्हें भी बीच-बीच मे आंग्रेजी शब्द का सहारा लेना पड़ता है।

इस वैश्वीकृत दुनिया में अंग्रेज़ी की दादागिरी और भाषाओं के एकीकरण से राष्ट्रों की भाषाई विविधता को काफी गहरी चोट लगी है। अपनी पहचान बचाने के लिए हमें इस छलावे को रोकना होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किस तरह अंग्रेज़ी को ऊँची उड़ानें भरने के एक मौके के रूप में पेश किया जा रहा है। मातृभाषा में पढ़ने के फायदे वैज्ञानिक तौर पर भी सिद्ध हैं। शुरुआती बचपन और शिक्षा और अपनी भाषा का गहरा संबंध है, यूनेस्को(2007)जैसी वैश्विक संस्था ने[10] ने भी बहुभाषी शिक्षा के लाभ बताये हैं। इसके अनुसार जो बच्चे अपनी मातृभाषा में अध्ययन करते हैं उनकी तार्किक क्षमता अन्य बच्चों से कई ज़्यादा होती है और उन्हें दूसरी भाषा अर्थात अंग्रेज़ी सीखने में भी कोई दिक्कत नहीं होती।[11+12] मैंने भी अंग्रेज़ी पाँचवीं कक्षा में ही सीखी और मुझे इसमें कोई दिक्कत नहीं होती। अतः यह अवधारणा गलत है कि विद्यालय में पहले दिन से ही अंग्रेज़ी बोलने वाले बच्चों को ज़्यादा लाभ होता है। वैश्वीकरण के साथ ही बहुत सारी भ्रामक अवधारणाओं को भारतीय समाज पर आरोपित किया गया है उनमे एक भाषा समबंधी यह अवधारणा भी है। यही समय है कि हम इसको ग़लत साबित करें और अपनी मातृभाषा और अपनी संस्कृति को बचाने के प्रयासों में जुट जाएँ।

संदर्भ:

1. Goswami, S. (2016). *Situating English in Language Politics of Assam*. Vol: 2. Issue: 4. Melbourne: Langlit, pg.: 34-42
2. *Ibid.,* pg. 34
3. Barman, Prasun. (2021). *Bengali Consciousness and Modern Assamese Thinking.* in N. Patgiri and D. Khatoniyar, *Modern Assamese Thinking.* Guwahati: Bandhab, pg. 36-63
4. Goswami, S. (2016). *Situating English in Language Politics of Assam*. Vol: 2. Issue: 4. Melbourne: Langlit, pg.: 34-42
5. Kar, M (2003). *Evolution of Assamese as a Medium of Instruction* in Miri, M (2003) Linguistic Situation in North-East India, New Delhi: Concept Publishing Company, pg. 65.

6. Upadhyaya, Amar (2017). *Medium of Instruction in the Schools of Assam: A Dilemma between Self-identity and Unification.* Dibrugarh: published online. Link: https://doi.org/10.15415/iie.2017.52007 pg: 118
7. Nye, Joseph. (2004). *Soft Power: The Means To Success In World Politics.* Sandwich: Hachette UK
8. Assam Non-Government Educational Institutions (Regulation & Management) Act, 2006. https://legislative.assam.gov.in/sites/default/files/swf_utility_folder/departments/legislative_medhassu_in_oid_3/menu/document/The%20Assam%20Non-Government%20Educational%20Institutions%20%28Regulation%20and%20Management%29%20Act%2C%202006..pdf
9. Barooah, V.K., *The Killing Fields of Assam*, Economic and Political Weekly, Vol. 48 No. 4, (2013). Pg.:43-52. Link: https://www.jstor.org/stable/23391348
10. *Report 2007 Strong foundations - Early childhood care and education.* (2007). UNESCO. Link: http://www.unesco.org/new/en/archives/education/themes/leading-the-international-agenda/efareport/reports/2007-early-childhood/
11. Yadav, Manoj K. (2014). *Role of Mother Tongue in Second Language Learning*. International Journal of Research. 11. 572-582.
12. Ozfidan, Burhan. (2017). *Right of Knowing and Using Mother Tongue: A Mixed Method Study*. English Language Teaching. 10. 15. 10.5539/elt. v10n12p15.

5. इस्लामी दुनिया में नारीवाद

सौम्या
बी.ए.ऑनर्स राजनीति विज्ञान
द्वितीय वर्ष

यह निबंध सबसे चर्चित विषयों में से एक पर है, "इस्लामी दुनिया में नारीवाद"। यह नारीवाद के एक संक्षिप्त परिचय से प्रारंभ होता है। उसके बाद यह निबंध अपनी मुख्यधारा पर आते हुए नारीवाद को इस्लामी ऐनक से देखता है। यह पहले इसके उद्गम पर ध्यान केंद्रित करता है और फिर गहराई से इसकी जगह-जगह विस्तृत टहनियों की जाँच करता है। फिर यह नाव आगे बढ़ाते हुए आलोचनाओं की ओर जाता है और अंततः एक आशावादी टापू पर कुछ अनुत्तरित सवालों की खोज में रुकता है।

सकता है:-"इस्लामी प्रतिमान के भीतर व्यक्त नारीवादी प्रवचन और अभ्यास।" इस्लामी नारीवाद की संकल्पना करने वाले पहले विद्वानों में से

नारीवाद एक ऐसी विचारधारा है जो हर क्षेत्र में [राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, आदि] में हर लिंग की समानता की बात करती है। आज तक कई नारीवादी आंदोलन हुए हैं जिन्होंने महिलाओं के खिलाफ हो रहे उत्पीड़न, प्रजनन अधिकार, समान आय, मताधिकार, शिक्षा का अधिकार, मातृत्व अवकाश, यौन हिंसा, चयन का अधिकार, आदि, के लिए आवाज़ उठाई है। फेमिनिज़्म [नारीवाद] शब्द का प्रयोग सबसे पहले एक यूटोपियन समाजवादी चार्ल्स फोर्रिएर ने किया था। इसके बाद नारीवाद ने आपने पंख तेज़ी से बिखेरे एवं इसकी विभिन्न लहरें जैसे कि पहली लहर[उदारवादी], दूसरी लहर[उग्रवादी], तीसरी लहर, चौथी लहर, आदि, उठीं। विभिन्न समाजों ने इसे अपने अनुसार समझा और व्याख्या की। इस्लामी दुनिया के नारीवाद पर आधारित होने के कारण यह सिर्फ इसी पहलू पर केंद्रित रहेगा।। दुनिया का चाहे कोई भी समाज क्यों न हो, फिर चाहे वह धार्मिक हो या न, विकसित हो या न, कुछ भी सनातन नहीं रहा, लेकिन जो एक चीज़ निरंतर रही है वह है 'पितृसत्ता'। सभी समाजों की महिलाओं को इस पितृसत्तात्मक बक्से के नुकसानों से जूझना पड़ता है, जिसमें उन्हें खुद को कैद रखना पड़ता है। इस्लामी समाज में भी महिलाओं की स्थिति भिन्न नहीं है। इस्लामी नारीवाद को मार्गोट बद्रान के शब्दों में बड़ी ही सरलता से समझा जा
एक उमैमा- अबु- बक्र हैं {काइरो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर}। उनके अनुसार नारीवाद की विविधता को मान्यता देना अनिवार्य है, वे आगे कहती हैं कि इसके कुछ प्रकार धर्म के निर्विरोध ही नहीं हैं बल्कि धर्म पर बहुत ज़्यादा आधारित भी हैं। वे कहती हैं कि एक अरब-मिस्री महिला होने के नाते वे बता सकती हैं कि इस्लामी नारीवाद भी एक ऐसा ही

प्रकार है, जहाँ लैंगिक जागरूकता पैदा करने के लिए विवेक से इस्लामी

मार्गोट बद्रान आगे कहती हैं कि इस्लाम के रूढ़िवाद और कट्टरपंथी ने इसकी पितृसत्तात्मक तस्वीर को और भी खराब कर दिया है। बद्रान कहती हैं कि इस्लामी नारीवादी कुरान की अनुकूल व्याख्या द्वारा समानता की तलाश करते हैं। वे ये भी कहती हैं कि यह धर्मनिरपेक्ष नारीवाद से ज़्यादा कट्टर

है क्योंकि यह धर्मशास्त्र के गहरे अध्ययन से लैंगिक समानता की बात करता है। उनका समर्थन करते हुए अस्मा बर्लास कहती हैं कि जिन देशों की लगभग 98% आबादी मुसलमान हो वहाँ पर धर्म को नज़रअंदाज़ करना नामुमकिन है और इसलिए उसी से कोई रास्ता निकालना ही उचित उपाय है। आधुनिक इस्लामी नारीवाद की संस्थापक, मोरोक्कन समाजवादी

सिद्धांतों का उपयोग करना इस्लामी नारीवाद का स्तंभ होना चाहिए।

फ़ातिमा मेरिनिसी आपनी किताब "बेयोंड द वेल्स" में महिलाओं की लैंगिकता के लिए पितृसत्तात्मक उत्पीड़नों के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं। मानव वैज्ञानिक ज़ीबा मीर होस्सेइनि के अनुसार, यह एक नयी चेतना और एक नई सोच है जो इस्लामी नारीवादियों की माँगों और आकांक्षाओं में इस्लामी भाषा और वैधता के साथ झलकता है।

मशहूर सामाजिक वैज्ञानिक होदा: सलाह इस्लामी नारीवाद को तीन भागों में बाँटती हैं: रूढ़िवादी, उदारवादी और कट्टरपंथी जिनका प्रतिनिधित्व मिस्री विद्वान सोअद् सलेह, हेबा रूफ एज़्ज़त और नस्र हामेद अबू ज़येद क्रमशः करते हैं। यहाँ पर सलेह उदारवादी व्याख्यानों की बात करती हैं जैसे औरतों द्वारा फ़तवे ज़ारी करना, हेबा ने पश्चिमी नारीवाद की आलोचना की है और लैंगिक कानूनों में सुधारों की माँग की है और एज़्ज़त ने भी बड़े ही विवेक से उन धार्मिक व्याख्याओं की आलोचना की है जो औरतों की अधीनता का समर्थन करते हैं। इस्लामी देशों में उत्तराधिकार के कानून क़ुरान की आयतों से लिए गए हैं, जिसमें पुरुषों को ज़्यादातर महिलाओं से अधिक या दोगुना प्राप्त होता है। इसके बाद पुरुष अपनी पत्नियों, बहनों, बेटियों, आदि को छोड़ देते हैं जिस कारण वे न सिर्फ अकेली रह जाती हैं बल्कि निराश्रित भी हो जाती हैं। संदर्भ और राजनीतिक रुख के आधार पर इस्लामी नारीवाद के विविध और सुनहरे आयामों को पहचाना जा सकता है। जो भी उपकरण इस्लामी नारीवादी और कार्यकर्ता प्रयोग में लाते हैं वे मुख्यतः दो तत्वों पर निर्भर करते हैं:

- *इतिहास को पुनः समझना और लिखना*
- *धार्मिक शास्त्रों का नये सिरे से अध्ययन।*

इस्लाम के इतिहास को पुनः लिखने में संलग्न नारीवादी सातवीं शताब्दी में अरब प्रायद्वीप की स्थिति को ध्यान में रखते हुए कहती हैं कि इस्लाम के प्रगतिशील और क्रांतिकारी स्वभाव ने महिलाओं के उद्धार में काफ़ी मदद की है, जैसे, भ्रूण हत्या पर रोक

लगाना, औरतों और बच्चों का उत्तराधिकार में भाग निश्चित करना, आदि। आज़ीज़ाह अल हिबरी ने इस्लामी इतिहास के शुरुआती वर्षों का अध्ययन किया और उसका मूल्यांकन करते हुए वे बताती हैं कि कैसे इस्लाम में 'पितृसत्तात्मक अधिग्रहण' के चलते औरतों के योगदान और उनके पक्ष को अदृश्य बना दिया। बाकी विद्वान मुहम्मद की दो पत्नियों, आईशा और ख़दीजा का उदाहरण देते हुए बताते हैं की वे इस्लाम में प्रगतिशील नारीत्व का प्रतीक हैं और दृढ़ता से इस्लाम के शुरुआती दौर में अपनी छाप छोड़ती हैं। इस्लाम के इतिहास में औरतों को जगह और सम्मान दिलाना एक राजनीतिक कार्य बन जाता है। इस्लामी इतिहास के पुनः अध्ययन के अलावा इस्लामी धर्मशास्त्रों को नए सिरे से पढ़ना भी इस ओर एक प्रभावशाली कदम है। यह कदम इज्तिहाद(स्वतंत्र पूछताछ) की संकल्पना पर आधारित है, इस्लामिक न्यायशास्त्र से निकला हुआ एक अभ्यास जो स्वतंत्र तरीके से धर्मशास्त्रों को पढ़ने और तर्क की अनुमति देता है। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि इज्तिहाद के द्वारा ये दावा किया जाने लगा है कि इस्लाम असल में नारी विरोधी नहीं है, इसकी पितृसत्तात्मक समाज ने ही इस तरह से व्याख्या की है कि इसका प्रयोग औरतों के अधीनीकरण के लिए होने लगा।

राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाए तो महत्त्वपूर्ण इस्लामी नारीवादी ज्ञान परियोजनाएँ ईरान, भारत, मोरोक्को, मिस्र, मलेशिया, इन्डोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में उभरी हैं। हालाँकि ये परियोजनाएँ अपने ज्ञान परिणामों और राजनीतिक महत्त्वों में भिन्न हैं लेकिन दो मुख्य तत्वों ने इन्हें जोड़ रखा है: ये अध्ययन और परियोजनाएँ महिला विद्वानों द्वारा विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केंद्रों में किए जाते हैं और ये व्याख्या केंद्रित और राष्ट्रीय भाषाओं में होते हैं, फिर आगे के कानूनी सुधार भी इन्हीं से आकर्षित और आधारित होते हैं।

भारत में इस्लामी नारीवादी आंदोलन मुस्लिम लॉ बोर्ड के ज़रिये लैंगिक समानता की माँग करता है। अपनी माँगों को वैधता प्रदान करते हुए भारतीय इस्लामी नारीवादी महिलाएँ धर्मनिरपेक्ष नारीवादियों से हट के भारतीय संविधान और सार्वभौमिक मानवाधिकार सिद्धांतों की जगह कुरान का संदर्भ लेती
हैं। वे बताती हैं कि क़ुरान उन्हें कई अधिकार प्रदान करती है लेकिन पितृसत्ता के कारण वे उनसे वंचित रह जाती हैं। वे पुरुष उलेमाओं पर यह आरोप लगाती हैं कि वे अपने पद का प्रयोग करके कम पढ़े-लिखे मुस्लिम समुदाय को कुरान की पितृसत्तात्मक व्याख्या पढ़ने और अभ्यास में लाने के लिए कहते हैं। इन आंदोलनकारियों की गतिविधियों के कारण वैश्वीकरण की ओर बढ़ती मुस्लिम दुनिया की धार्मिक सत्ता में एक विखंडन देखने को मिला है। जन शिक्षा का प्रसार, मीडिया और परिवहन के नए रूप, मोबाइल शक्ति श्रम, आदि के कारण अनन्य अधिकारिक ज्ञान को अनेक प्रश्नों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें महिलाओं ने एक अहम भूमिका निभाई है। यह कहना कि यह आंदोलन सफल हुआ है या नहीं अभी भी एक खुले प्रश्न की भाँति है लेकिन इसका प्रभाव तो निश्चित रूप से ही देखने को मिला है।

इस्लामी नारीवाद की संकल्पना को समर्थन तो मिला ही है लेकिन आलोचनाओं से अछूता नहीं रह पाया। न सिर्फ धार्मिक सत्ताधारियोंसे बल्कि धर्मनिरपेक्ष नारीवादियों से भी आलोचनाओं और प्रश्नों की बौछार हुई है। इस्लामी नारीवादियों पर पितृसत्ता के प्रति क्षमाशील होने के आरोप लगते रहे हैं तथा यह भी कहा जाता है कि उन्होंने कुरान से सिर्फ कुछ चयनित अनुकूल आयतों की ही व्याख्या की है। उनकी आलोचना उनके शाही रवैये और अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्रों तक सीमित रहने के लिए भी होती है।

बेशक कई महिलाओं ने इस आंदोलन में हिस्सा लिया है लेकिन फिर भी इसका स्वभाव समावेशी नहीं है। साथ ही यह अन्य पहलू जैसे वर्ग, जाति, आदि को पूर्णतः नज़रअंदाज़ कर देता है। इतना ही नहीं यह बाकी लिंगों को भी महत्व नहीं देता और केवल स्त्री और पुरुषों को ही संभव लिंगों के तौर पर देखता है।

धर्म और नारीवाद की अन्य धाराओं की आलोचनाओं का विषय होते हुए भी इसने एक काम तो बेहतरीन तरीके से किया है, इसने अध्ययन के क्षेत्र में इस्लामी नारियों और नारीवाद को एक उचित स्थान प्राप्त करवाया है जिसे पहले सिर्फ पश्चिमी महिलाओं का क्षेत्र माना जाता था। हालांकि कई प्रश्नों के उत्तर अभी बाकी भी हैं और इसके सामने खड़े हैं लेकिन यह सब देखने की बात रहेगी कि यह कैसे इनका सामना करता है और आने वाली चुनौतियों से लड़ेगा।

संदर्भ:-

- इस्लामिक फेमिनिज़्म- मुल्कि अल शर्मानी
- डिलेम्माज़ ऑफ इस्लामिक ऐंड सेकुलर फेमिनिस्ट्स ऐंड फेमिनिज़्मस्- हुमा अहमद घोष
- बिट्वीन सेकुलर ऐंड इस्लामिक फेमिनिज़्म- मार्गोट बद्रान
- फेमिनिज़्म इन इस्लाम, व्हाट इज़ इट ?- मार्गोट बद्रान
- द क्वेस्ट फॉर जेंडर जस्टिस- ज़ीबा मीर होस्सेइनि

अशोक के फूल के आधार पर हजारी प्रसाद द्विवेदी की सांस्कृतिक दृष्टि

मो.आजम, एम.ए., हिंदी

प्रस्तावना-

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी निर्विवाद रूप से छायावादोत्तर निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके निबंधों की आधारभूमि भारतीय संस्कृति है।किसी भी पुष्प, पौधे, पशु या पक्षी को माध्यम बनाकर एक मनोरम भाव भूमि की सृष्टि करते हुए भारत के अतीत और वर्तमान सांस्कृतिक जीवन की सरलता को छू लेना द्विवेदी जी के लिए एक सहज व्यापार है।आपकी दृष्टि में साहित्य एवं जीवन की हर समस्या का एक सांस्कृतिक पहलू है जिसकी जानकारी समस्या के उचित समाधान के लिए आवश्यक है। आपके श्रेष्ठ निबंधों में आत्म-व्यंजना का तत्व प्रधान है इसलिए विषय माध्यम के रूप में सामने रहता है और उनका व्यक्तित्व धीरे धीरे उभर कर पाठक के मन पर छा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी के सांस्कृतिक एवं ललित निबंधकार के रूप में माने जाते हैं। वे हिंदी के महान गद्य लेखको में से एक हैं।उनका अध्ययन क्षेत्र व्यापक एवं विशद था। आपके प्रसिद्ध निबंध संग्रह इस प्रकार हैं-अशोक के फूल – 1948, कल्पलता- 1951,मध्यकालीन धर्म साधना-1952, विचार और वितर्क-1957, विचार प्रवाह-1959 ,कुटज-1964 साहित्य सहचर–1965, आलोक पर्व-1972 !

अब आपकी सम्पूर्ण रचनाओं का संग्रह "हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली" शीर्षक से 11 खण्डों में प्रकाशित हो चुका है।इनमें आठवें और नवें खण्डों में उनके समस्त निबन्ध संकलित हैं।उनके निबंधों में विचारात्मक, भावात्मक, आत्म-व्यंजक, कथातात्मक, वर्णात्मक, आदि सभी शैली तत्व मिल जाते हैं।इनके अतिरिक्त भाषण शैली की प्रवाहमयता, उद्धरण-बहुलता, आत्मीयता एवं सजीवता भी आपके निबन्धों की रमणीयता के प्रमुख कारण हैं।उनके चिंतन का केंद्रीय विषय 'मनुष्य' है।मनुष्य की जय-यात्रा पर आपका अखण्ड विश्वास है।द्विवेदी जी साहित्य में मनुष्य को स्थान देते हुए कहते हैं कि- "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता, और परमुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके,जो उसके हृदय को परदुःख-कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मूझे संकोच होता है।"

मनुष्य की जय-यात्रा पर आपका अखंड विश्वास है।संस्कृति, धर्म, दर्शन ,विज्ञान तथा समस्त कला साधनाएं मनुष्य की जय-यात्रा के विजय उद्घोष हैं। अपरिमेय जिजीविषा से प्रेरित मनुष्य निरंतर आगे बढ़ रहा है।जड़ता के अनेक स्तरों को तोड़कर वह चिन्मय तत्व की उपलब्धि के लिए अग्रसर है।द्विवेदी जी ने इसी मनुष्य और उसके पूरे सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परिवेश में मूर्त करने का प्रयत्न किया है। 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' के बाद हिंदी निबंध को नवीन मोड़ देकर आचार्य द्विवेदी ने ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया है।ललित और आत्म-व्यंजना की दृष्टि से आपका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है।अशोक के

फूल,नाखून क्यों बढ़ते हैं,
देवदारु, कुटज, बसंत आ गया है, वर्षा घनपति से घनश्याम तक, मेरी जन्मभूमि,घर जोड़ने की माया आदि निबंध हिंदी साहित्य में क्लासिक बन गए हैं।

संस्कृति से तात्पर्य :-
संस्कृति मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करने वाले आदर्शों, आचार - विचार और कार्य अनुष्ठानों की समष्टि का नाम है।
हिंदी भाषा के विद्वान प्रोफेसर हरिमोहन के अनुसार -" संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द का स्थानापन्न है।कल्चर शब्द का प्रयोग अंग्रेजी में प्रायः कृषि एवं पशुपालन के लिए हुआ है।"संस्कृत शब्द की उत्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तइन प्रत्यय लगाकर हुई है।अतः संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है 'उत्तम प्रकार से किया गया कार्य'। सामान्यता समाज में रहने वाले शिष्ट मनुष्य के सभी
साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं कलात्मक विचारों और कार्यकलापों को संस्कृति के अंतर्गत गिना जाता है।संस्कृति को लेकर हिंदी विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-
रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार- "संस्कृति के संबंध में रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय मैं लिखते हैं कि -"संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और इसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सब व्यवहार है और दूसरों को समझने की शक्ति है।" (संस्कृति के चार अध्याय-दिनकर)आचार्य द्विवेदी अपने निबंध अशोक के फूल में लिखते हैं कि-"संस्कृति की विविध साधना की सर्वोत्तम परिणीति है"(अशोक के फूल)। कवि सुमित्रानंदन पंत के अनुसार– "हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद के चार स्तंभों में से एक महत्वपूर्ण स्तंभ सुमित्रानंदन पंत संस्कृति के विषय में लिखते हैं कि -"संस्कृति को मैं मानवीय पदार्थ मानता हूं जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्म स्थल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे उर्ध्व चेतना-शिखर का प्रकाश और सामाजिक जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएं गुम्फित है।उसके भीतर आध्यात्म, धर्म, नीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि, रीति तथा व्यवहारों का सौंदर्य भी एक अंतर-सामंजस्य ग्रहण कर लेता है।संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिए।" हिंदी साहित्य कोश के अनुसार- "विभिन्न शास्त्रों, दर्शनों आदि में होने वाले चिंतन साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परिहत साधन आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापार को संस्कृति कहा जाता है"। इस तरह संस्कृति उन समस्त मूल्यों,दर्शनों और मनुष्य के उच्चतम भावनाओं और विचारों का संचित और समन्वित रूप है जो मानवीय समाज को सुंदर और मानवीय बनाए रखने सहायक है।आगे इसी आलोक में अशोक के फूल निबंध के आधार पर द्विवेदी जी की सांस्कृतिक दृष्टि पर विचार किया जा रहा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'अशोक के फूल' एक महत्वपूर्ण निबंध है जो 1948 में प्रकाशित हुआ था।द्विवेदी जी ने 'अशोक के फूल' में भारतीय संस्कृति पर विस्तार से चर्चा की है।वह उनके बारे में भी विचार करते हैं जो भारतीय संस्कृति को भूलते जा रहे हैं।डॉ नामवर सिंह अशोक के फूल का महत्व प्रतिपादित करते हुए अपने निबंध संस्कृति और सौंदर्य में लिखते हैं कि -"अशोक के फूल केवल एक फूल की कहानी नहीं,भारतीय संस्कृति का एक अध्याय है और इस अध्याय का आनंगलेख पढ़ने वाले हिंदी में पहले व्यक्ति हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी।पहली बार उन्हें यह अनुभव हुआ कि एक एक फूल,एक एक पशु एक एक पक्षी ना जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं।अशोक की भी अपनी स्मृति परंपरा है।आम की भी,बबूल की भी,चंपे की भी।(संस्कृति और सौंदर्य,नामवर सिंह)

आजकल ललित निबंध लिखने वाले कई लेखक निकल आए हैं लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं है की 'अशोक के फूल' आज भी अपनी जगह पर है। भारत को महामानव सागर कहने वाले रवींद्रनाथ ठाकुर एक अरसे से यह बतलाते आ रहे थे कि जिसे हम हिंदू रीतिनीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्येत्तर उपादानों का मिश्रण है,किंतु यही संदेश अशोक के फूल के माध्यम से सामने आया तो उसकी चोट कुछ और ही थी।क्या इसलिए कि वह मनोजन्मा कन्धर्व के धनुष से छूटा है ? फूल की मार कितनी गहरी हो सकती है इसका एहसास कराने के लिए अशोक के फूल की ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं - "देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है सब कुछ में मिलावट है सब कुछ अभी शुद्ध है।" (अशोक के फूल)

इन्हीं पंक्तियों के महत्व को आधार बनाकर नामवर सिंह अपने उपरोक्त निबंध में लिखते हैं कि- "सच कहा जाए तो आर्य संस्कृति की शुद्धता के अहंकार पर चोट करने के लिए अशोक के फूल लिखा गया, प्रकृति वर्णन करने के लिए नहीं।यह निबंध द्विवेदी जी के शुद्ध पुष्प- प्रेम का प्रमाण नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि का अनूठा दस्तावेज है।"(संस्कृति और सौंदर्य,नामवर सिंह) अज्ञेय जहां संस्कृति की केवल संग्राहकता की हिमायत करते हैं वहां द्विवेदी जी त्याग का जिक्र करना नहीं भूलते।अशोक के फूल में भी उसी अनुच्छेद के अंतर्गत एक दृष्टा की तरह मानव जाति की दुर्गम निर्गम धारा के हजारों वर्ष का रूप देखते हुए लिखते हैं कि "मनुष्य की जीवनी - शक्ति बड़ी निर्मम है,वह सभ्यता और संस्कृति के प्रथामोहो को रौंदती चली आ रही है।न जाने कितने धर्माचार्यो, विश्वासों, उत्सवो और व्रतों को धोती- बहाती यह धारा यह जीवनधारा आगे बढ़ी है।संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है।हमारे समाज का आज हो रूप है न जाने कितनी ग्रहण और त्याग का रूप है ।"(अशोक के फूल)

द्विवेदी जी के सामने योजनाबद्ध रूप से एक मिश्र संस्कृति तैयार करने की समस्या नहीं है, समस्या यह है कि आज हमारे भीतर जो मोह है संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है उसे किस प्रकार ध्वस्त किया जाए?

भारत एक विविध संस्कृतियों वाला देश है।प्राचीन काल से अब तक भारत पर विविध आक्रमण हुए और कुछ में हम विजय भी हुए और पराजित भी लेकिन हमारा सांस्कृतिक गौरव बचा रहा और बढ़ता रहा। द्विवेदी जी रविंद्र नाथ का नाम लेते हुए कहते हैं कि "रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को महामानव समुंद्र कहा है।विचित्र देश है यह, असुर आये, आर्य आये, शक आये, नाग आये,यक्ष आये, गंधर्व आये, न जाने कितनी मानव जातियां यहां आई और आज के भारतवर्ष के बनने में अपना हाथ लगा गई।जिसे हम हिंदू रीतिनीति कहते हैं वे अनेक आर्य और आर्येत्तर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है।" (अशोक के फूल)

इस तरह हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतवर्ष को बनाने में अनेक जातियों का योगदान मानते हैं ।द्विवेदी जी अशोक को भारतीय संस्कृति का प्रतीक मानते हैं और कहते हैं कि- 'लोग अशोक के फूल का महत्व भूल गए हैं'।द्विवेदी जी इस प्रसंग में लिखते हैं कि "अशोक के स्तबको में वह मादकता आज भी है।पर पूछता कौन है? इन फूलों के साथ क्या मामूली स्मृति जुड़ी है ?भारतवर्ष का स्वर्ण युग इस पुष्प के प्रत्येक दल में लहरा रहा है।"(अशोक के फूल)

आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति को भुलाए जाने को लेकर चिंतित रहते हैं और इस भूलने का कारण वह लोगों के स्वार्थ को मानते हैं और लिखते हैं कि "दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है केवल उतना ही याद रखती है,जितने में उसका स्वार्थ सधता है।बाकी को फेंक कर आगे बढ़ जाती है।शायद शोक में उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती।सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।"(अशोक के फूल)इस प्रकार जो लोग अशोक के फूल का महत्व भूल गए हैं उनके बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वार्थी शब्द का प्रयोग करते हैं।द्विवेदी जी आज की संस्कृति की भी चिंता करते हैं। उनके अनुसार "आज जो हमारी संस्कृति है वह क्या बाद में ऐसी ही रहेगी?आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं वह क्या ऐसे ही बनी रहेगी ? सम्राटों-सामंतों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया है वह लुप्त हो गई है, धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महान समझा था वह लुप्त हो गया है, मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस राशि उमड़ी थी वह वाष्प की भांति उड़ गई, क्या यह मध्य युग के कंकाल में लिखा हुआ व्यवसायिक युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा।" (अशोक के फूल)

जो अशोक के महत्व को भूल गए हैं उन्होंने अशोक के फूल का कुछ नहीं बिगाड़ा वह तो मस्ती में झूल रहा है। इस प्रसंग को द्विवेदी जी इस तरह लिखते हैं कि-"अशोक आज भी उसी मौज में है जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था।कहीं तो कुछ नहीं बिगड़ा है।कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृति ।" (अशोक के फूल)

द्विवेदी जी संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणिति मानते हैं। इस बात स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं- 'धर्म के सम्मान में भी अविरोधी वस्तु है'। स्पष्ट है कि द्विवेदी जी के लिए सत्य, धर्म, या संस्कृति का मूल भाव अविरोध है।अविरोध की साधना ही संस्कृति की साधना है। दरअसल विरोध भेद-बुद्धि से पैदा होता है और अविरोध अभेदानुभूति से। यदि सभी साधना प्रणालियों की मूल प्रेरना एक है तो भिन्नता का स्वीकार होते हुए भी विरोध नहीं हो सकता क्योंकि अविरोध के बिना अंतर के आनंद की अभिव्यक्ति संभव नहीं है द्विवेदी जी का मानना है कि -" मनुष्य ने इस अविरोध के भाव को इस विश्वजनीन अभेदमूलक सत्य को अभी तक संपूर्ण रूप से पाया नहीं है, पर उसे पाने के लिए व्यग्रभाव से उद्योग कर रहा है।यह मार- काट, नोच-खचोट और झगड़ा-टंटा भी उसी प्रत्यंग के अंग हैं।क्योंकि रास्ता खोजते समय भटक जाना,थक जाना या झुंझला पड़ना, इस बात के सबूत नहीं हैं कि रास्ता खोजने की इच्छा ही नहीं है।"(अशोक के फूल)

दरअसल द्विवेदी जी एक अदम्य आस्थावादी व्यक्ति हैं।और संस्कृति की साधना को मनुष्य की जय-यात्रा के रूप में देखते हैं।जीवन की विकास-प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए वह सवाल उठाते हैं कि क्या मनुष्य इस सृष्टि की अंतिम परिणति है? द्विवेदी जी किसी बात की प्रशंसा इसलिए नहीं करते कि वह भारतीय हिंदू हैं।उन्हें जो अच्छा दिखाई पड़ता है, उसी को भारतीयता का लक्षण मानते हैं और लिखते हैं कि -"कोई भी सुसंस्कृत आदमी अगर वह सचमुच सुसंस्कृत है किसी असत्य अर्धसत्य सिद्धांत का इसलिए समर्थन नहीं कर सकता कि उसे उसके पूर्वजों के पूर्वजों ने मान लिया था।"वे सवाल उठाते हैं कि- "क्या भारतीय होने से ही कोई चीज ऊंची और अभारतीय होने से ही नीची हो जाती है।"(हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली,पृष्ठ संख्या 196)

द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के प्रति प्रसंशा का भाव रखते हैं तो वही जहां वह संस्कृति के लक्षण अविरोध को देख पाते हैं ।वे लिखते हैं कि "मैं जब भारतीय विशेषण जोड़कर संस्कृति शब्द का प्रयोग करता हूं तो मैं भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षातकृत अविरोधी धर्म की बात ही करता हूं।" (वही पृष्ठ 201)

द्विवेदी जी अपने निबंध अशोक के फूल में भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा का उल्लेख करते हैं।उपरोक्त बातों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वाकई में द्विवेदी जी के निबंधों में भारतीय संस्कृति और उसके गौरव को लेकर विस्तार से बात की गई है। अशोक के फूल भी उनमें से एक निबंध है। द्विवेदी जी के निबंधों में उनका पांडित्य भी साफ झलकता है।इतिहास, पुराण, साहित्य से गंभीर तथ्य उठाकर उन्हें समसामयिकता से जोड़ देना उनके निबंधों की विशिष्टता है।

#सहायक ग्रंथ

1 संस्कृति और सौंदर्य - नामवर सिंह
2 संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर
3 अशोक के फूल - हजारीप्रसाद द्विवेद
4 हिंदी का गद्य साहित्य - डॉ रामचन्द्र तिवारी5 इंदनाथ भारती पत्रिका - जनवरी मार्च अंक 2007

7.राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार

सीमांकन सहाय

बी. ए .ऑनर्स

राजनीतिक विज्ञान

द्वितीय वर्ष

भगवान राम भारत की 'आत्मा' हैं, फिर भी दुर्भाग्य से सेक्यूलरिज़्म के सबसे बड़े प्रतीक पर ही सर्वाधिक धार्मिक विवाद भारत में हुआ है। राम करोड़ों भारतवासियों के लिए पूजनीय हैं पर हैरनी तो तब होती है जब उनको भारत से नहीं अपितु एक धर्म विशेष से जोड़कर देखा जाता है। परंतु वास्तविकता तो कुछ और ही है, भारत के विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और पंथों में श्री राम को आदरणीय स्थान प्राप्त है।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर का मानना था कि रामायण न केवल एक अनोखी नीति कथा है बल्कि अलौकिक सच्चाई का दस्तावेज भी है। इससे व्यापक रूप से भारतीय आनंद लेते हैं।'रामायण' भारतीय संस्कृति की विरासत है इसलिए इस पर सिर्फ़ हिंदुओं का अधिकार होना अन्यायपूर्ण है।

रामायण की कहानी सिर्फ़ एक कहानी नहीं है, यह एक गाथा है, जो कि अनंत है और इस अनंत गाथा के अनेको रूप रहे हैं। इसलिए तुलसीदास जी ने लिखा भी है -

हरि अनंत हरि कथा अनंता।

कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।।

हिंदुओं की मान्यता के अनुसार 'मूल रामायण' देवर्षि नारद ने महर्षि वाल्मीकि को सुनाई थी और उसी को महर्षि वाल्मीकि ने लेखनीबद्ध किया जो आगे चलकर वाल्मीकि रामायण के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसे आज के दौर में रामायण का सबसे पुराना टेक्स्ट माना जाता है परंतु इसके अलावा भी हिंदुओं में अनेक रामायण प्रचलित हैं; जैसे कि 12वीं सदी में तमिल भाषा में लिखी गई 'रामावतारम्' और 14वीं सदी में तेलुगु भाषा में लिखी गई 'श्री रंगनाथ रामायण'।

कमाल की बात है कि कालांतर में रामायण का विभिन्न धर्मों और संप्रदायों से परिचय हुआ जिसके परिणामस्वरूप अनेक अन्य राम कथाओं का जन्म हुआ। इसी कड़ी में कंबोडियन रामायण 'रिआमकेर' का जन्म हुआ जो कि सातवीं शताब्दी के 'वियेल कांटेल' शिलालेख में उल्लेखित है। खास बात यह है कि इस रामायण में हिंदू विचारों को बौद्ध विषयों के अनुकूल बनाया गया है।रामायण के अन्य बौद्ध संस्करण जैसे कि 'हिकायत सेरी रामा' और 'फ्रा लक फ्रा राम' ने तो हिंदू धर्म से अपना जुड़ाव ही खो दिया और अब वे जातक कथाओं के रूप में जाने जाते हैं। बौद्ध धर्म में ऐसी मान्यता है कि जातक कथाएं भगवान बुद्ध के पिछले जन्म की कहानियां हैं। 850 AD से 950 AD के बीच लिखी गई थाई रामायण 'रामकियेन' में थेरवाद बौद्ध धर्म के साथ जीवात्मा सिद्धांत (थाईलैंड के मूल निवासियों का सिद्धांत) के तत्त्वों का मिश्रण दिखाई देता है।

कई जैन ग्रंथ भी भगवान श्रीराम से जुड़ाव रखते हैं। हरीभद्र द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'ध्रुतखयाना' में श्री राम को 63वां सकल पुरुष यानी कि महान व्यक्ति माना गया है। हेमचंद्र द्वारा रचित 'त्रिषष्ठीसकलपुरुषचरित्र' भी इस बात की पुष्टि करता है। जैन धर्म में भगवान राम को आठवां बालभद्र यानी कि वह व्यक्ति जिसने आदर्श जैन जीवन जिया है, भी माना गया है।

श्रीराम से मेल मिलाप रखने में सिख धर्म भी पीछे नहीं है। रामायण का सिख संस्करण भी है जो कि सिखों के धर्मग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में उल्लिखित है तथा यह आध्यात्मिक रूप में वर्णित है। इसमें राम को 'अंतरात्मा', लक्ष्मण को 'मन,' सीता को 'बुद्धि' तथा रावण को 'अहंकार' के रूप में देखा गया है। गुरु गोविंद सिंह द्वारा लिखा गया सिखों के 'दशम ग्रंथ' में एक रचना है जिसे 'चौबीस अवतार' के नाम से जाना जाता है। इस रचना में राम बीसवें अवतार के रूप में वर्णित किए गए हैं। इसके अलावा गुरु गोविंद सिंह ने 'राम अवतार' के नाम से एक अन्य रचना भी की है जिसमें श्री कृष्ण अवतार भी सम्मिलित हैं।

अगर अभी तक आप ऐसा सोच रहे थे कि सिर्फ भारत में जन्में धर्मों ने श्री राम को अपनाया है तो ऐसा बिल्कुल नहीं है। इस्लाम ने भी भगवान राम पर उतना ही प्यार और अधिकार दिखाया है। 14वीं सदी में बंगाल के मुस्लिम पठान शासकों ने संस्कृत में लिखी रामायण का बंगला भाषा में अनुवाद करवाया। ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य मात्र श्री राम से लगाव और अपनी भारतीय संस्कृति से प्यार रहा। केरल और लक्षद्वीप के मुसलमान तो मप्पिला गीतों पर खेमार नृत्य कर रामायण के ऊपर प्रस्तुति देते हैं। 'मप्पिला' गीतों की एक

इस्लामिक शैली है जिसमें अरबी व मलयालम भाषाओं की काव्य संरचना एवं ढांचों का प्रयोग किया जाता है तथा खेमार नृत्य एक प्रकार का कम्बोडियन नृत्य है।

धर्मों के साथ-साथ प्रभु राम की कथा ने अलग-अलग प्रान्तों को भी जोड़ने का काम किया है। उड़ीसा में जहां उड़िया भाषा में 'विलंका रामायण' और 'जगमोहन रामायण' है

तो वहीं बंगाल की संस्कृति में 'कृतिवासी रामायण' प्रख्यात है। सुदूर दक्षिण में कन्नड़ भाषा में 'श्री

'रामायण दर्शनम' और 'तोरावे रामायण' है। मलयालम भाषा में 'अध्यात्मरामायणम् किलिपट्टू', गोआ में कोंकणी भाषा में 'रामायणु', मराठी में 'भावार्थ रामायण', कश्मीर में कश्मीरी भाषा में 'रामावतार चरित्र' और अवधि में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा कृत 'रामचरितमानस' सुप्रसिद्ध है।

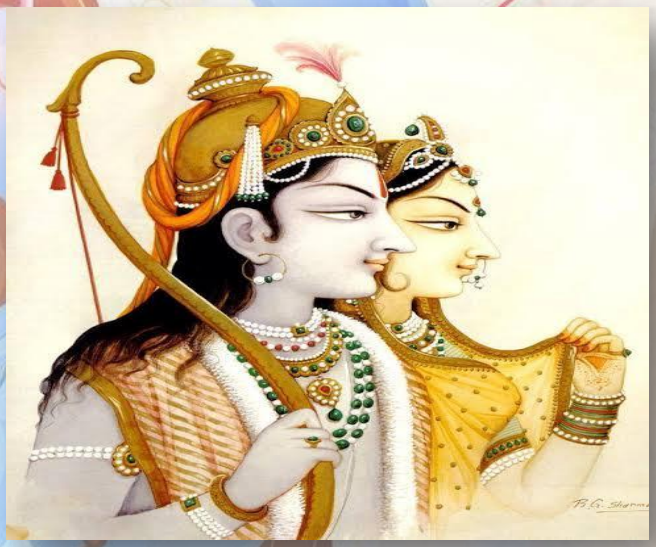

श्री राम की कहानी में जन- जातियाँ भी हैं और तथाकथित नीच समझी जाने वाली जातियाँ भी, ब्राह्मण भी हैं और क्षत्रिय भी। धनवान भी हैं और गरीब भी। जिस प्रकार से इस कहानी ने देश के हर व्यक्ति को छुआ है, चाहे वह किसी भी धर्म, प्रांत, श्रेणी या जाति का हो, यह कहना कदापि गलत नहीं होगा कि रामायण की कथा ने पूरे देश को एक धागे में पिरो रखा है। राम, भारत के प्रत्येक जन के तन-मन में बसे हैं इसलिए राम कथा अमर है।

राम की ज़रूरत समाज को हमेशा ही रहेगी और हर काल में नई-नई रामायण लिखी जाएगी जो समाज तक श्री राम के संदेश को आवश्यकतानुसार पहुँचाते रहेंगे। हमें वर्तमान परिस्थितियों में इस बात को समझना चाहिए और द्वेष को त्याग कर प्रेम से मिल जुल कर अपने देश को राममय बनाकर रहना चाहिए। इस प्रकार तुलसीदास जी ने सालों पहले पूरे लेख का सार समझा दिया था -

नाना भाँति राम अवतारा।

रामायन सत कोटि अपारा।।

आज इसे समझ कर प्रभु श्री राम के सिद्धांतों पर हमें अमल करने की आवश्यकता है। राम, भारत की आत्मा हैं व रहेंगे और रामायण, भारत की 'अमिट विरासत'

संदर्भ:-

: **समन्वय 2021**

- The Argumentative Indian by Amartya Sen
- History of the Sikhs: The Sikh Gurus, 1469-1708 by Hari Ram Gupta
- *https://en.m.wikipedia.org/wiki/Ramayana*
- *https://en.m.wikipedia.org/wiki/Versions_of_Ramayana*

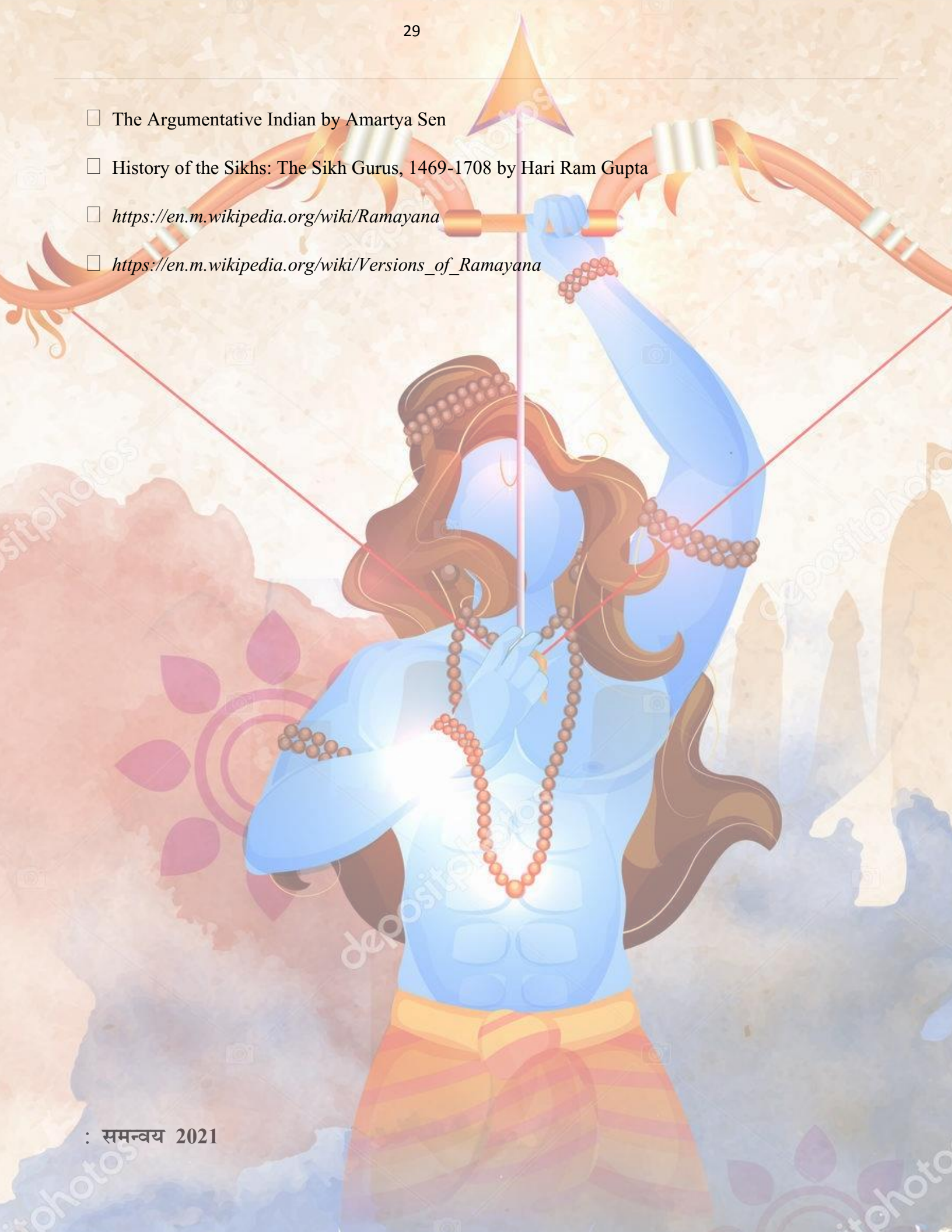

8.कोरोना काल- भारत की नई पहचान

अभिषेक तिवारी
बी. ए .ऑनर्स हिन्दी
प्रथम वर्ष

भारत दुनिया का एक ऐसा देश है जिसके पास बेहिसाब संपदा के साथ-साथ बेहिसाब जनसंख्या भी है, परंतु यह वृहद जनसंख्या जो आज तक हमारे विकास का रोड़ा माना जाता था, वह आज हमारी प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। मार्च 2020 से पहले जिस राष्ट्र को भारतीय वस्तुओं की तुलना में विदेशी सामानों के इस्तेमाल में गर्व का अनुभव होता था, आज मार्च 2021 तक उसे यह समझ में आ गया है कि स्वदेशी और स्वनिर्मित चीज़ों के अलावा कोई उसके काम का नहीं हैं। वह व्यक्ति जिसे विदेश में काम करना और रहना पसंद था, उसे समझ आया कि देश क्या होता है? घर क्या होता है? परिवार क्या होता है?

इस एक वर्ष में हमने क्या खोया क्या पाया का हिसाब करें तो हमें पता चलता है कि हमने कोरोना योद्धा के रूप में कई देशभक्तों को खोया है। वे अपने साथ हम पर लगे कुछ बड़े आरोपों को साथ ले गए जिसमें शामिल हैं, स्वास्थ्य सुविधाओं की बुरी स्थिति, चिकित्सकों की अनियमितता आदि। इस काल में हमने यह पाया है कि जब हम एक संपूर्ण राष्ट्र की तरह एकजुट होकर काम करते हैं, तो हम किसी भी और कितनी भी बड़ी परेशानी से हँसते-हँसते लड़ सकते हैं।

वह भारत जो पूरे विश्व में बदनाम था, खराब स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए उसकी स्वास्थ्य सुविधाओं का लोहा पूरा विश्व मान रहा है। हमारे वो चिकित्सक जिनके समय पर न पहुंचने की खबरों से अखबार भरे होते थे, आज वे अखबार उन्हीं की गाथाओं से भरे हैं। इस काल मे हमने कई चिकित्सक देखे हैं जिन्होंने कोरोना संक्रमितों की रक्षा में अपनी जान गंवा दी। यह इस बात का प्रमाण है कि कर्मनिष्ठता में भारतीयों से ऊपर कोई नहीं है।

कोरोना का पहला मामला 1 दिसंबर 2019 को चीन में मिला। जिसके बाद यह बिजली की तरह फैल रहा था। मार्च 2020 तक यह विश्व के अधिकतर देशों तक पहुंच चुका था। 25 मार्च 2020 को पूरे भारत में 21 दिन के लिए भारत बंद की घोषणा भारत सरकार द्वारा की गई। सरकार के इस कदम का

विरोध हुआ। पर सरकार अडिग रही। विरोध की वजह थी, उस वक्त भारत में इस का प्रकोप बहुत कम था और प्रमाणित केस 500 के आसपास थे।

भारत सरकार के इस सचेत रवैए का पूरा विश्व अनुसरण कर रहा था। जगह जगह बंदी शुरू हो रही थी। भारतीय प्रतिष्ठा में सुधार यहीं से शुरू हुआ।

उसके उपरांत इसी कड़ी में हम आगे बढ़ते रहे। हमने अपनी स्वास्थ्य सुविधाओं को सुधारा, आवश्यक वस्तुओं का निर्माण अपने राष्ट्र में करना शुरू किया, जैसे- पीपीई किट, मास्क आदि। इसके बाद हम इस स्थिति तक पहुंच गए कि हम विश्व के अन्य राष्ट्रों को मास्क, वेंटिलेटर का उपहार देने लगे। हमारे राजदूत श्री विनय मोहन क्वात्रा जी द्वारा 9 अगस्त 2020 को नेपाल के चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ जनरल पूर्ण चंद्र थापा जी को दस वेंटिलेटर सौंपे गए थे। हमारी दानवीरता हमारी आत्मनिर्भरता का परिणाम है।

हमारी सरकार ने ना केवल उन लोगों की हिफाज़त को आपना कर्तव्य समझा जो भारत में हैं अपितु उसने अपने सारे देशवासियों को वापस भारत लाने के लिए 'वंदे भारत' अभियान चलाया जिसके द्वारा भारतीयों को विश्व के कोने-कोने से वापस लाया गया। यह कदम एक ज़िम्मेदार सरकार की भूमिका प्रदर्शित करता है।

इस कड़ी में मलेरिया की दवा हाइड्रोक्सीक्लोरोक्वीन का सार्थक प्रभाव मरीजों के इलाज में देखा गया, तो विश्व ने एक बार पुनः भारत की ओर उम्मीद भरी नजरों से देखा और हमने उन्हें निराश नहीं किया। हमने विश्व को इसका निर्यात किया।

फिर समय आया वैक्सीन की होड़ का जब विश्व के सारे प्रभुत्वशाली देश वैक्सीन की होड़ में प्रथम आने के लिए लड़ रहे थे। उस समय भारत की एक वैक्सीन निर्माता कंपनी सीरम इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया ने दूसरी अमेरिकी वैक्सीन निर्माता कंपनी एस्ट्राजेनेका के साथ हाथ मिलाया और कोविशील्ड नामक वैक्सीन का निर्माण किया। दोनों कंपनीयों ने प्रथम आने के मुकाबले मानवता की हिफाज़त को ज्यादा अहमियत दी। यही कारण है कि विश्व की पहली वैक्सीन स्यूतनिक, जिसका निर्माण रूस द्वारा किया गया और जिसे उसने 11 अगस्त 2020 को स्वीकृति दे दी के मुकाबले दुनिया को भारतीय वैक्सीन पर अधिक भरोसा है।

भारत सरकार द्वारा कोविशील्ड और कोवैक्सीन को 3 जनवरी 2021 के दिन आपातकालीन इस्तेमाल की आज्ञा दे दी गई जिसके बाद 16 जनवरी से भारत में वैक्सीनेशन शुरु हुआ। यह वह वक्त था जब पूरे विश्व के शक्तिशाली और अमीर देश अपने लिए वैक्सीन का संग्रह कर रहे थे।उसी समय भारत ने 20 जनवरी 2021 को अपनी जमा वैक्सीन में राष्ट्र के लिए संग्रहित कर बाकी वैक्सीन को अपने पड़ोसी राष्ट्रों में बांटना शुरू किया। हमने इस अभियान को नाम दिया 'भारत मैत्री'।

एक खास बात यह थी कि इसमें हमने पड़ोसियों को प्राथमिकता दी। हमारे इस कदम ने

पड़ोसियों के साथ अपने रिश्ते की सौहार्द्रता के साथ-साथ पड़ोसी प्रेम को भी प्रदर्शित किया। इसी कड़ी में हमने बांग्लादेश (20 लाख), म्यांमार (15 लाख) भारत मैत्री के तहत हमने सबसे पहले पड़ोसी राष्ट्र भूटान को डेढ़ लाख वैक्सीन का दान किया और साथ ही साथ उसी दिन हमने मालदीव को 1 लाख वैक्सीन का दान दिया। इसके बाद दानों का तांता लगा हुआ है,और चलता रहेगा।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री माननीया शेख हसीना जी के शब्द इस बात की गवाही देते हैं कि भारत किस प्रकार अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित कर रहा है। खास बात यह है कि यह प्रभुत्व हमने युद्ध करके, हथियारों से डरा कर नहीं अपितु मदद कर, सहायता कर हासिल की है। माननीया शेख हसीना जी कहती हैं- भारत ने कोरोना वायरस की जो वैक्सीन हमें उपहार के तौर पर भेजी है वह (22 जनवरी) आज पहुंच गई है ।इसके लिए वे भारतीय प्रधानमंत्री की आभारी हैं।

दान के साथ ही साथ हमने कई राष्ट्रों को सस्ती वैक्सीन मुहैया करायी है जिसमें ब्राज़ील, साउदी अरेबिया आदि शामिल हैं। ब्राज़ील सरकार द्वारा भरत का धन्यवाद अलग अंदाज़ में किया गया। उन्होंने शब्दों के साथ एक फ़ोटो भी पोस्ट की जिसमें दिखाया जा रहा है कि पवनपुत्र हनुमान संजीवनी लेकर भारत से ब्राजील जाते दिख रहे हैं। यह केवल चित्रात्मकता नहीं अपितु वहां की सरकार और जनता ने वैक्सीन और इस मदद की कीमत बताई है ।

साथ -ही- साथ कैनेडियन सरकार ने भारत के सम्मान में झंडा रैली निकाली जिसके अंतर्गत वहां की सारी गाड़ियों में वहां के साथ-साथ भारत का झंडा भी लगाया गया। ये सारे धन्यवाद के तरीके हमें अपने पुराने स्थान और वर्चस्व की ओर प्रदत्त कर रहे हैं।

अब वर्तमान की यदि हमारी स्थिति का आकलन किया जाए तो यह कहना गलत नहीं होगा कि आज शक्तियों का विस्थापन भारत की ओर हो रहा है। कोरोना फैलाने को लेकर, चीन से उठते भरोसे का सीधा सा फायदा हमें हुआ। हमें निवेशकों ने निवेश के लिए चुना ठीक इसी समय व्यापार नीति में ढिलाई कर सरकार ने उन्हें आकर्षित किया है ।

भारत की इस स्थिति सुधार का श्रेय कहीं- न- कहीं हमारे नेतृत्वकर्ता माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी को ही जाता है जिन्होंने विश्व को भारत की ओर आकृष्ट किया, दुनिया को पुनः अखिल भारतीय चेतना से अवगत कराया। ऐसा सिर्फ़ एक भारतीय होने के नाते मैं नहीं लिख रहा हूं। वैश्विक स्तर पर मिले सम्मान सीओल शांति पुरस्कार 2018 ,यू एन ग्रीन अवार्ड 2018 , ग्रैंड कालर ऑफ़ द स्टेट ऑफ़ पलेस्टाइन, फोर्ब्स की सर्वाधिक शक्तिशाली लोगों की लिस्ट में नौवां स्थान उनकी तारीफों और ताकतों का बखान करते हैं।

हमने एक निर्माता के रूप में अपनी पहचान स्थापित की है जिसके लिए हमे आत्मनिर्भरता की तरफ़ चलना होगा क्योंकि हमने यह साबित किया है जब तब हमने स्वनिर्मित चीज़ो का इस्तेमाल किया है तब तब विश्व हमारे आगे नतमस्तक हुआ है। चाहे वह सस्ता वैक्सीन हो या सस्ता मिशन मंगल।

इस आशा के साथ कि मोदी जी की परिकल्पनाओं के साथ चल कर हम विश्व में अपना पुराना वर्चस्व वापस स्थापित कर लेंगे। बस हमारा फ़र्ज़ यह है कि हम केवल शिक्षा ग्रहण ही न करे बल्कि उसका इस्तेमाल राष्ट्र और संपूर्ण मानव जाति के हितों में कर सके क्योंकि हमारा इतिहास कभी मै नहीं हमेशा हम की शिक्षा देता है।

ग्रंथों का मूल मंत्र है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कषि दुःख भाग भवेत।

जिसका अर्थ सभी सुखी रहें सभी रोगमुक्त रहें सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को दुख का भागी न बनना पड़े हमारी शांति फैलाने की कोशिश और साथ ही साथ विरोधियों को दिये जाने वाले जवाबों का विश्व कायल है। बस हमें इसे बरकरार रखना है। और पुनः विश्व गुरु का दर्जा हासिल करना है।

संदर्भ:-

1) टाइम्स ऑफ इंडिया

2) दैनिक भास्कर

3) नवभारत

9.राजनीति की प्रासंगिकता

संगम शर्मा

बी. ए. ऑनर्स

राजनीतिक विज्ञान

तृतीय वर्ष

जनीति का समाज से संबंध संभवतः उतना ही पुराना है जितना कि समाज का अस्तित्व। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने राके साथ ही राजनैतिक प्राणी भी बन गया था क्योंकि राजनीति मनुष्य की सामाजिकता का सर्वोच्च प्रदर्शक थी। जानवर भी प्रायः अपनी रक्षा के लिए झुंड में रहते हैं लेकिन हम उसे समाज नहीं कहते हैं क्योंकि जानवरों में राजनैतिक तार्किकता का अभाव होता है।

अपने जन्म से लेकर वर्तमान तक राजनीति की यात्रा वास्तव में उच्च आदर्शों से लेकर अप्रासंगिकता तक की यात्रा है। पश्चिमी चिंतन का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि आज से लगभग 2400 वर्ष पूर्व यूनानी समाज के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक वस्तु राजनीति ही थी। यह मनुष्य के सर्वोत्तम मनुष्यता के लक्ष्य को पाने का एकमात्र माध्यम थी। जो व्यक्ति राजनीति को अप्रासंगिक तथा अरुचिकर मानते थे उन्हें "कमतर" मनुष्य माना जाता था। भारतीय चिंतन राजनीति को युग धर्म के रूप में देखता था ।यह ईश्वर को प्राप्त करने, उसका अनुभव करने के अलग -अलग साधनों में से एक थी जिसे राजधर्म की संज्ञा दी गई थी।

भारतीय राजनीतिक चिंतक चाणक्य से जब पूछा गया कि ,आप जैसे विद्वानों की भला राजनीति में क्या भूमिका हो सकती है? चाणक्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि राजनीति इतनी अप्रासंगिक नहीं है कि उसे मात्र राजनेताओं के हाथों में छोड़ दिया जाए।[1] सामूहिकता मनुष्यता का आधार है और राजनीति उस सामूहिकता को औचित्य प्रदान करने का साधन है। यह मानव समाज की दिशा तथा दशा को तय करती है। प्लेटो के शिष्य तथा प्रसिद्ध ग्रीक चिंतक अरस्तु ने कहा था कि राजनीति से तटस्थ व्यक्ति या तो महामानव है या फिर निरा-पशु।[2] तर्क मनुष्य को पशु से अलग करता है या यूं कहें कि तर्क ही मनुष्यता का प्रमाण है।राजनीति ही वह आयाम है जहां मनुष्य अपने तर्क का निर्बाध और सर्वोत्तम प्रयोग कर सकता है। प्लेटो का मानना था कि शासन प्रक्रिया में भागीदार न होना मूर्खता का प्रमाण है क्योंकि इससे कम तार्किक मनुष्य को आप पर शासन करने का अधिकार मिल जाता है।[3]

मानव समाज का आज तक का विकास राजनीति से पृथक नहीं समझा जा सकता है। विकास के विभिन्न चरणों से होते हुए हम वैश्वीकरण,उदारवादी लोकतंत्र तथा बहुसंस्कृतिवाद के विश्व में जी रहे हैं। यह सभी आयाम हमारे दैनिक जीवन की रूपरेखा तय करते हैं परंतु क्षण मात्र ठहर कर आकलन करने पर ज्ञात होता है

कि इन सब के मूल में राजनीति ही निहित है।संचार या परिवहन के श्रेष्ठ साधनों का विकास हो या राजतंत्र व अल्पतंत्रों को ध्वस्त करते हुए लोकतंत्र का आगमन, यह सब कुछ तब तक संभव नहीं था जब तक व्यक्ति को तार्किक मानकर उसे स्वतंत्र न किया जाए या उसे चिंतन,अभिव्यक्ति तथा आविष्कार की स्वतंत्रता न उपलब्ध कराई जाएं। निश्चित रूप से व्यक्ति का विभिन्न अतार्किक बंधनों से मुक्त होना एक राजनैतिक घटना ही थी। इतिहास साक्षी है, राजनीति ही राष्ट्रों की नियति का निर्धारण करती है।राजनीति के चलते जहां एक ओर नाजीवादी हिटलर तथा फासीवादी मुसोलिनी तैयार होते हैं वहीं दूसरी ओर स्वस्थ लोकतांत्रिक तथा मानवतावादी संविधान स्थापित होते हैं। राष्ट्र की नियति से नागरिकों की नियति जुड़ी हुई है अर्थात राजनीति अंततः हमारे और आपके जीवन को प्रभावित करती है।यूरोप और विश्व के प्रख्यात कूटनीतिज्ञों में से एक बिस्मार्क ने कहा था कि राजनीति हर संभावना को वास्तविकता में परिवर्तित करने की कला है।[4] आज जिस जर्मनी को हम विश्व के सशक्त राष्ट्रों में गिनते हैं ,वह बिस्मार्क के राजनैतिक प्रयासों का ही परिणाम है।

आधुनिक काल में शक्ति का राजनीति के केंद्र में स्थापित होना एक महत्वपूर्ण घटना थी। पिछली चार शताब्दियों से शक्ति और राजनीति एक दूसरे के पर्याय बनते दिखाई पड़ रहे हैं।इसका परिणाम यह हुआ है कि राजनीतिक शक्ति-संघर्ष का ही एक रूप बनकर रह गई है।इतना ही नहीं , साधारण जन मानस भी राजनीति को शक्ति प्राप्त करने के लिए खेला जाने वाला खेल मानने लगा है।राजनीति को 'रक्तहीन युद्ध' की संज्ञा दी जा चुकी है,वहीं दूसरी ओर युद्ध 'रक्तरंजित राजनीति' के रूप में देखे जाने लगे हैं।[5]ऐसा प्रतीत होता है,मानो राजनीति के इस खेल में मानवता कहीं लुप्त हो गई है।

भारतीय राजनीति में पिछले कुछ दशकों से बड़ा अपराधीकरण इसी राजनीति-शक्ति एकीकरण का परिणाम है।प्रश्न यह उठता है कि ऐसे समय में जब राजनीति मानवता विरोधी षड्यंत्रों का पर्याय बनती दिखाई पड़ रही है क्या जनसाधारण को इसे अप्रासंगिक मानकर तटस्थ हो जाना चाहिए?

इस प्रश्न का सर्वोत्तम संभव उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है।राजनीति को षड्यंत्रों का ढेर मानकर या 'शक्ति-संघर्ष' से भय खाकर मुंह मोड़ लेना मूर्खता होगी।इसी तटस्थता के चलते राजनीति में वे लोग स्थापित हो रहे हैं जिन्हें नहीं होना चाहिए।राजनीति, मानवता के रथ को प्रगति पथ पर ले जाने वाली सारथी है। यदि वह आज स्वयं मानवता विरोधी दृष्टिगत हो रही है तो इसका सरल अर्थ यह है कि 'श्रेष्ठ' और 'बुद्धिजीवी' मानव उसका नेतृत्व नहीं कर रहे हैं।

इस जघन्य अपराध में राजनीति को अप्रासंगिक मान चुके हम लोग समान रूप से दोषी हैं क्योंकि वर्तमान राजनीति अंततः जनतांत्रिक राजनीति है।राजनीति से विरक्त होकर हम मात्र पशुता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी तार्किकता का परिचय देते हुए राजनीति को पुनः मानवता की ओर मुड़ें और शक्ति को राजनीति का लक्ष्य ना मानकर एक साधन ही माने।जनतंत्र की सभी बुराइयों का एक ही समाधान है - 'और अधिक जनतंत्र' ।[6]

संदर्भ

1. Sanghi Ashwin , "Chankaya's Chant"
2. Aristotle, "Politics"
3. Plato Quotes on Politics Brainyquotes.
4. Bismarck Quotes on Politics, from 'allauthors'
5. Mao Zedong Quotes, 'quoteikon'
6. Alfred E. Smith Quotes , 'allauthor'

10. प्रो. मकरंद परांजपे का साक्षात्कार

दीपक तैनगुरिया
पूर्व छात्र

.1 विवेकानंद जी की जब भी बात होती है वह अधिकतर युवाओं के संदर्भ में होती है, कृपया आप बतलाए कि विवेकानंद जी का युवाओं के लिए, मिलेनियल्स के लिए क्या संदेश था?

उत्तर:- मैं आपको याद दिलाऊं कि 12 जनवरी जो कि जन्मदिवस भी है स्वामी जी का, 1863 में उनका जन्म हुआ था, इस दिन को हम राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में भी मनाते हैं, और इसकी वजह ये है कि हमारे यहाँ बहुत बड़े-बड़े द्रष्टा, चिंतक, ऋषि हुए हैं पिछले 200-300 वर्षों में, पहले से ही होते रहे लेकिन जब हम आधुनिकता की बात करते हैं, उपनिवेश से बाहर आने की बात करते हैं, तो ये सब जो आधुनिक हमारे ऋषि रहे हैं, उनका एक बहुत बड़ा ऋषिमंडल हो जाता है. लेकिन उन सब में, अगर हम थोड़ा उनको परखें तो हम पाएगें कि उनकी जो छवि, उनकी जो तस्वीरें भी हमारे पास मौजूद है उसमें आप देखेंगे कि दाढ़ी, सफेद या भूरे बाल, ऐसी छवि हमें नजर आएगी, जैसे हम गांधीजी की परिकल्पना जब करते हैं मन में भी उनकी छवि हम याद करते हैं, तभी एक बूढे से व्यक्ति, दांत नहीं, बेदान्ती जिन्हें हम कहते हैं, ऐसे ही गुरूदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर, कई जो हमारे सबसे प्रतिभाशाली प्रभावी पुरूष और महिलाओ की छवियाँ भी हमेशा वृद्ध रही हैं, और हम सोचते हैं अक्सर कि बुढापे में जो ज्ञान है कि कुछ चिंतन, विचार के स्तर का विकास होता है, मेरे पीछे गांधी जी की तस्वीर है उसमें वो बूढे लगते है, राधाकृष्ण जी जो हमारे संस्थान के संस्थापक हैं वो भी वयोवृद्ध ही लगते हैं, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि स्वामी जी 40 बरस की आयु पाने के पहले ही गुजर गये, तो वो उम्र भर युवा ही रहे, आपको सोचना है कि अपने उम्र के आखिरी 9 वर्षों में जब उन्होनें दुनिया को हिला दिया तब वो अपनी उम्र के तीसरे दशक में ही थे, यहा ँ पहला निष्कर्ष यह है कि शरीर की चाहे कैसी भी उम्र हो, विचार की उम्र लंबी होती है, उनके विचार हमेशा नौजवानों के विचार थे, उत्साहित पुरूष थे, उनमें बहुत रजोगुण, हमें कहा जाता है कि शांत रहिए,

स्थिर रहिए, विवेकानंद कहते थे, उठो, खड़े हो जाओ, काम करो, दुनिया को बदल दो, फुटबा ॅल खेलो जिससे आपको ज्यादा लाभ होगा, गीता पढ़ो, ये सब बहुत युवा और तरूण विचार है।

आज का जो युवा है उसको चिंता है कि मेरे भविष्य का क्या होगा, हमेशा एक किस्म की अनिश्चितता है, आर्थिक अस्थिरता है, एक पीढी थी सबको सरकारी नौकरी चाहिए थी या अफसर बन जाओ, ऐसे जो लक्ष्य थे पहले के अब वो चलेंगे नहीं, आज की दुनिया बदल गयी है, आज अगर आप स्वामी जी को पढेगें तो आपको बहुत प्रोत्साहन मिलेगा, क्योंकि स्वामी जी ने सफलता या यश का एक मंत्र सिखाया है, कि योग या व्यावहारिक वेदान्त वो है जिससे आप अपने जीवन में, इहलोक में सफलता पा सकते हैं और दूसरा आपको एकाग्रता सीखनी होगी, राजयोग जो उनकी पहली किताब थी अमेरिका के व्याख्यानों की, और ये पिछले 500 सालों के बाद का यह नया काम है योगसूत्रों पर पतंजलि के, चूंकि हमारी परंपरा टिप्पणियों की परंपरा है। जैसे गीता एक ही है लेकिन उस पर आज भी टिप्पणियां होती है. ध्यान, धारण, समाधि. समाधि की ज्यादा बात नहीं करते. फर्ज करते है दीपक जी कि आपको एक बढिया कार चाहिए जिसकी कीमत है 40-50 लाख, स्वामी जी इसे हास्यास्पद मानकर नकारते नहीं है, वे कहते इसके लिए प्रयास करो, लेकिन संकल्प से पहले की चीज है साधना।और साधना का मूल है। एकाग्रता, यानि इच्छा को आप इतना तीव्र बनाइए, और फिर चाहिए गहरा ज्ञान।इच्छाएं बिखरी हुई है, एकाग्रता नहीं होती। और फिर क्रिया, आपको क्रियान्वित होना है। स्वामी जी को आप पढेगे तो आपको सफलता का राज मिल जाएगा, साधना क्या है, आपको सिखाएगें वो, और कर्मठता, एकाग्रता एवं जब हम संकल्प लेंगे चाहे कोई कुछ भी कुछ न हो लेकिन विवेकानंद आत्मविश्वास जगाते है और इतनी चोटी पर ले जाते है कि आपको लगेगा कि मेरे लिए कोई भी चीज नामुमकिन नहीं है, मैं सशक्त हूं, ये जो सशक्तिकरण है इसका तंत्र, मार्ग जानने के लिए स्वामी जी प्रासंगिक हैं।

प्र. 2 आपने अपनी पुस्तक में लिखा है इस पुस्तक का वैकल्पिक शीर्षक हो सकता था "अज्ञात विवेकानंद", ऐसा क्यों है कि इतने बरस बाद भी हम विवेकानंद जी को संपूर्णता से नहीं समझ पाए ?

उत्तर:- देखिए आज के दौर में हम कई चीज़ो को चला सकते है, उससे काम ले सकते हैं लेकिन बहुत कम समझते हैं, आजकल ये भी चर्चा होती है हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता, हमारे वेद, हमारे तंत्र लेकिन सवाल ये है कि हमने समझा कितना? स्वामी जी को वही समझ सकते है जो विद्या को ज्ञान को आत्मसात करते हैं, आज तो स्वामी जी की हर जगह एक छवि दिखेगी, उन्हें सियासी तंत्र से भी जोड़ा जाता है, आज की सत्ता के लिए स्वामी जी मिसाल बन चुके हैं, ये बहुत अच्छी बात है,
लेकिन नारे लगाकर समझ बढ़ती नहीं है, हमारे जैसे विचारक या बुद्धिनिष्ठ जो
लोग हैं उनके लिए वैसे समझना मुश्किल हो जाएगा, स्वामी जी बहुचर्चित हैं लेकिन अनजान हैं।स्वामी जी का जो अंतर्मन था उसकी प्रेरणा उनकी चेतना है, हमारा जो मन है, उसका स्तर है उसमें और स्वामी जी में बहुत बड़ा अंतर है,

स्वामी जी दुनिया के लिए कुछ चाहते थे, वैश्विक परिवर्तन, वैश्विक प्रतिस्थापना, वे चाहते थे कि ऊंच नीच कम हो, दबे लोग ऊपर आएं, वे बेहद प्रगतिशील विचार के थे, वे आध्यात्मिक क्रांति चाहते थे।

प्र. 3 स्वामी जी की विरासत के साथ, उनके विचारों के साथ, व्यक्तिगत स्तर पर, सामूहिक स्तर पर एवं राजनैतिक स्तर पर कैसे न्याय कर सकते हैं? कैसे आत्मसात कर सकते हैं?

उत्तर:- किसी को जानने के लिए हमें थोड़ा बहुत उनके जैसा बनना पड़ेगा, थोड़ा उन रास्तों पर चलना पड़ेगा, स्वामी जी ने इतना लिखा, इतना कुछ कहा, वो आत्मज्ञान, आध्यात्मिक क्रांति, आत्मचेतना हमारे भीतर लानी होगी लेकिन हम प्रतीकों में अटके हैं, स्वामी जी कठोपनिषद् को हमेशा कोट करते थे, लेकिन ये एक जुनून है, हमारे भीतर जो ताकतें हैं उसे हम परिष्कृत करें, खोजें और समझें और उन सबको अंततः जियें, स्वामी जी का जो रास्ता है आत्मजागरण का, प्रबुद्ध भारत का , उसके लिए हम स्वयं को प्रबुद्ध बनाएं, उसके लिए कोई शाॅर्टकट नहीं है, हमें या तो कर्मयोगी बनना पड़ेगा या ज्ञानयोगी। सत्य की उपासना कीजिए, अहिंसा बहुत बड़ी चीज़ है, इसी धरती को ही स्वर्ग बनाना है, स्वामी जी के विचारों के साथ न्याय के लिए अनुभव पाइए , उस पर विचार बनाइए और अंत में आचार आते हैं, उसे अपने जीवन में ढालें।

(प्रोफेसर मकरंद परांजपे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के निदेशक है. वे Swami Vivekananda: Hinduism and India's Road to Modernity पुस्तक के लेखक है।
दीपक तैनगुरिया एआरएसडी काॅलेज के 2017-2020 बैच के विद्यार्थी रहे हैं, वर्तमान में वे आईआईएमसी के छात्र हैं।)

समन्वय

आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

धौला कुआँ, नई दिल्ली
फोन: 011-24113436, 24117508, 24111390
वेबसाईट: www.arsdcollege.ac.in